अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-20, 1-15 जून, 2018

5 जून : संपूर्ण क्रांति दिवस

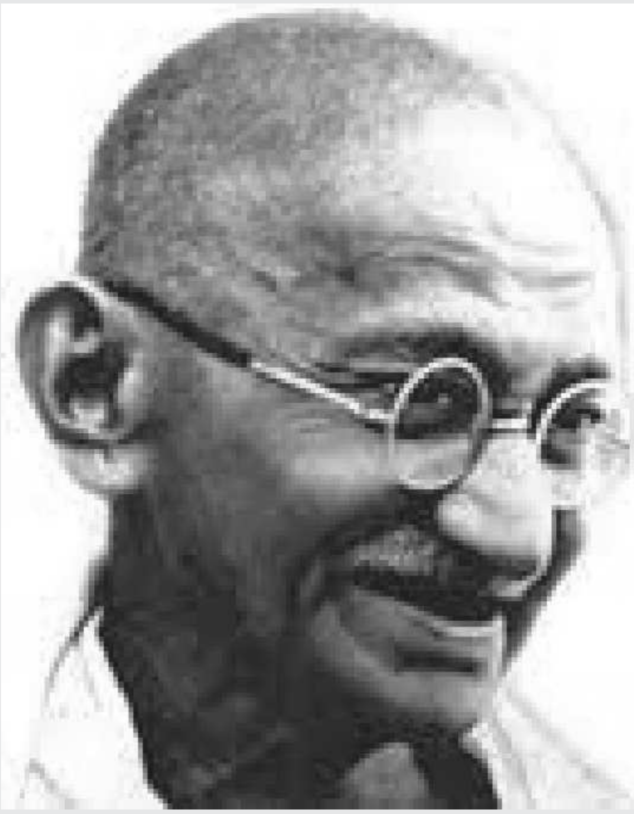

मात्र मताधिकार पर्याप्त नहीं

''हम यह मानते हैं कि हमारे वोट पर खड़ा संसदीय लोकतंत्र बहुत अच्छी तरह चल रहा है। राज चलाने वाले मानते हैं कि वयस्कों को वोट का अधिकार दे दिया, तो आदर्श राज्य-व्यवस्था हो गयी! जबकि सारे वोटर न तो एक स्तर के होते हैं, न राजनीति-अर्थशास्त्र आदि के प्रश्न ही वे समझ पाते हैं। जनतंत्र का यह ढोंग ही तो है!''

- जयप्रकाश नारायण

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 20, 1-15 जून, 2018

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
फोन : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह   भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. स्वराज, सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति... 2
2. स्वराज के लिए त्याग... 3
3. आगे का युग नेतृत्व का नहीं... 5
4. भारत की नियति को पुनर्भाषित करने... 7
5. दुर्योधन का दरबार... 12
6. अनियोजित शहरीकरण : मलीन... 15
7. साथी नेत्रा... 16
8. उपन्यास - 'बा'... 17
9. गतिविधियां एवं समाचार... 19
10. कविताएं... 20

संपादकीय

स्वराज, सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति से अपेक्षाएं

'स्वराज' को परिभाषित करते हुए गांधी ने कहा—''मैं चाहता हूं कि भारतवर्ष पूरी गरिमा के साथ अपने पैरों पर खड़ा हो और उस स्थिति का निरूपण 'स्वराज' शब्द से अधिक अच्छी तरह अन्य किसी भी एक शब्द से नहीं हो सकता।''

गांधी ने देश की आत्मा को पहचाना था। इसलिए उन्होंने अपनी पहली पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में, जहां पश्चिमी सभ्यता और उसके विकास को शैतानी सभ्यता कहकर उसकी मुखालफत की, वहीं अपने अंतिम लेख में लिखा—''हमें जो मिली है, वह सिर्फ राजनीतिक आजादी है। देश के लाखों गांव और ग्रामीण जनता की दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक और नैतिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। सैनिक सत्ता नागरिक सत्ता के अधीन रखने के लिए दोनों के बीच संघर्ष अनिवार्य है और इससे भी लोकतंत्र की ओर जाने का भारत का मार्ग प्रशस्त होगा। सन् 1930 की पूर्ण स्वराज्य की प्रतिज्ञा अभी पूरी नहीं हुई है।'' गांधी हमें यह अपना आखिरी संदेश देकर चले गये।

यह देश का दुर्भाग्य था कि उसने भारतीय सभ्यता के संदेश को भुला दिया और पश्चिमी औपचारिक लोकतंत्र और पश्चिमी आदर्श के चक्कर में जा फंसा। राज्य-सत्ता और अर्थ-सत्ता के अत्यधिक केन्द्रीयकरण के कारण दिल्ली में बैठे चंद लोगों के हाथों के शक्ति सिमट कर रह गयी, जिसके लिए कभी गांधी ने चेतावनी दी थी कि दिल्ली में बैठे हुए 20 लोगों से भारत का पुनर्रुत्थान नहीं होगा। आज हम देख रहे हैं कि भारतीय जनता किस कदर इस केन्द्रित तंत्र की गुलाम बना दी गयी है और कृषि प्रधान देश में किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं।

5 जून 1974 को जयप्रकाश नारायण ने पटना के गांधी मैदान की एक महती सभा में संपूर्ण क्रांति की घोषणा की थी। बाद में 'जयप्रकाश का बिगुल बजा तो जाग उठी तरुणाई है' और 'संपूर्ण क्रांति अब नारा है, भावी इतिहास हमारा है' जैसे क्रांति गीत हर जुबान पर चलने वाले गीत साबित हुए, जिसे आज भी गांधीवादी और संपूर्ण क्रांति धारा के लोग बड़े उत्साह से गाते हैं। आखिर गांधी, विनोबा और जयप्रकाश के स्वराज्य, सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति से हमारी क्या अपेक्षाएं रहीं? यदि हम जेपी के विचारों पर गहराई से दृष्टि डालें तो इसका प्रथम सार यह है कि विश्व में कोई क्रांति पूर्ण नहीं हुई, इसलिए यह एक पूर्ण क्रांति होगी, जिसे उन्होंने संपूर्ण क्रांति की संज्ञा दी। गांधी ने भी इसी तरह आजादी को पूर्ण नहीं माना इसलिए पूर्ण स्वराज्य बाकी है, ऐसा कहा। दोनों ही महापुरुषों की अपेक्षाएं मानव और समाज के हर क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन का था। साथ ही उन्होंने इस क्रांति के वाहक युवा शक्ति को ही माना, जो हम गांधी और जेपी दोनों के युवकों के साथ मुखातिब होने पर पाते हैं। क्रांति के साधन के रूप में जेपी ने निर्दलीयता और शांतिमयता को अपनाया। 1974 के आंदोलन में 'हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा' को प्रयोग में सिद्ध करके दिखाया। जिस तरह गांधी का सत्याग्रह स्वराज के लिए था उसी तरह जेपी ने सत्याग्रही संघर्ष संपूर्ण क्रांति के माध्यम से लोकतंत्र के विकास, मानव की मुक्ति के साथ एक नये समाज की रचना के लिए प्रस्तुत किया। इसी परिप्रेक्ष्य में जेपी ने शांतिमय वर्ग-संघर्ष या वर्ग निराकरण को भी प्रतिष्ठा दिलायी। छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के लोगों ने निःसंदेह इस दिशा में अपने भूमि संघर्षों में अपने करतब भी दिखलाये। स्पष्टतः चाहे वह गांधी, विनोबा और जेपी के स्वराज सर्वोदय या संपूर्ण का विचार हो, सबके केन्द्र में एक नये वैकल्पिक समाज की रचना की अपेक्षा रही है।

वस्तुतः जमाने की मांग ही क्रांति की पुकार बन जाती है। युग आते हैं और जाते हैं, साथ में समाज में पुराने ढांचों को तोड़कर नया बना डालते हैं क्योंकि नया ढांचा उस युग की अनिवार्यता बन जाती है। कभी

अत्यन्त कल्याणकारी सामाजिक, आर्थिक पद्धति भी एक विनाशकारी पद्धति बन जा सकती है, इसे तोड़कर नयी पद्धति कायम करना संपूर्ण समाज की सामूहिक पुकार बन जाती है। इसे ही हम एक क्रांतिकारी परिस्थिति का उभार या उस युग की पुकार कहते हैं।

गांधी के स्वराज और जेपी के संपूर्ण क्रांति के विचार अपने-अपने युग की पुकार है और उनमें कोई तात्त्विक भिन्नता नहीं है। दोनों का उद्देश्य एक नये समाज का निर्माण और मनुष्य की मुक्ति है। हालांकि इतने बड़े परिवर्तन या क्रांति का नाम लेते ही लोगों के सामने तलवार और हिंसा दिखायी देने लगती है क्योंकि इतिहास बताता है कि मनुष्य ने अपनी मुक्ति के लिए कई बार तलवार का प्रयोग किया है। स्वाभाविक है कि अन्याय से मुक्ति का विचार संगठित संघर्ष के रूप में सामने आता है और संघर्ष का मतलब ही खूनी संघर्ष होता है। किन्तु गांधी ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को अहिंसा के माध्यम से चलाकर खूनी क्रांति की धारा को बिलकुल पलट दिया। इसी धारा में हम कट्टर मार्क्सवादी जयप्रकाश को गांधी के साथ पाते हैं, संपूर्ण क्रांति के जिनके विचार दुनिया की अधूरी हिंसक क्रांतियों का विकल्प है।

आज तो दुनिया भर क्रांति के संबंध में लोगों की धारणा बिल्कुल बदल गयी है। हिंसा यदि कहीं व्यवहार में है तो राज्यसत्ता में है और वह भी दंडशक्ति के रूप में नागरिक के विरुद्ध। हिंसा में फंसी दुनिया की कोई सरकार और जनता खूब जानती है कि हिंसा से सिर्फ दमन संभव है, सामाजिक परिवर्तन नहीं। कोई मुक्ति हिंसा से हासिल नहीं की जा सकती है, यह लोग समझने लगे हैं। तलवार चाहे सत्ता की हो या क्रांतिकारी की दोनों में जीवन की दृष्टि और मूल्य एक ही हैं। तलवार से अन्याय और शोषण के स्रोत ना ही कटते हैं न मरते हैं। गांधी ने हमें इसलिए यही सिखाया कि हम जिन व्यक्तियों को शोषक और जालिम समझते हैं, वे खुद उस परिस्थिति के शिकार होते हैं। इसे क्रांतिकारी बदलना चाहता है, लेकिन समाज उस परिस्थिति का सहयोग करता होता है। शोषण के स्रोत तब सूखेंगे, जब क्रांति युद्ध से अलग होकर, व्यक्ति और समूह के जीवन की साधना का रूप ले लेगी। जेपी के भी संपूर्ण क्रांति के बुनियादी मूल्य में व्यक्ति के परिवर्तन की आकांक्षा है। गांधी, विनोबा और जयप्रकाश सबों ने क्रांति को शुद्धि की प्रक्रिया माना है। गांधी के स्वराज्य, विनोबा के सर्वोदय और जेपी की संपूर्ण क्रांति शब्द भले ही अलग हों, सबों के अपेक्षाएं एक ही हैं। ऐसी क्रांति जो जीवन साधना बनकर जीवन को शुद्ध करेगी, मनुष्य जहां रहता है उस समाज की शुद्धि, मनुष्य के जीवका की शुद्धि, उसके संस्कारों और उसके संस्थाओं की शुद्धि यहां तक उसके संघर्षों के तरीकों की भी शुद्धि।

इसलिए बापू, विनोबा और जेपी तीनों अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में संपूर्ण क्रांति का दर्शन करते थे। गांधी और जेपी की क्रांति कोई घटना नहीं है—सतत् क्रांति और उसका आरोहण है, जो तब तक समाप्त नहीं होगा, जब तक मनुष्य अपनी शुद्ध और सात्त्विक जीविका तथा जीवन का स्वयं स्वामी न बन जाय और उसे केन्द्रित शक्ति का मोहताज न रहना पड़े।

सवाल है कि रचना, संघर्ष और क्रांति के मार्ग की प्रक्रिया में स्वराज्य और संपूर्ण क्रांति के हम वाहक कहां हैं? ठिठक या भटक तो नहीं गये? इसके साथ ही यह भी विचारणीय है कि नये विचार और नयी सूचनाएं जो नयी जीवन क्रांति मानते हैं उसका चिन्तन हमने कितना किया?

हमें यदि स्वराज्य, सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति के लक्ष्यों को प्राप्त करना है तो सबसे पहले ग्राम स्वराज्य स्थापित कर मानव जाति की विनाश की कीमत पर होने वाले विकास को उलटने का प्रयास करना होगा, जिस विकास की मुखालफत गांधी ने 100 साल पहले 'हिन्द स्वराज' में की थी। यदि हमने ऐसा प्रयास नहीं किया तो दुनिया पूछेगी—'कहां गये वे लोग?'

–अशोक मोती

स्वराज के लिए त्याग

❑ **गांधी**

मुझसे जब मुजफ्फरपुर में विद्यार्थियों की एक सभा में भाषण देने को कहा गया तो मैं किसी भी प्रलोभन के बिना राजी हो गया; क्योंकि मुझे याद है कि जब मैं अपना चम्पारण का कार्य शुरू करने आया था, तो पहले दिन मुजफ्फरपुर के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण देने का सुअवसर, मैंने तत्काल यह सोचकर स्वीकार कर लिया कि इस समय, जब मुझे भारत के विद्यार्थी समुदाय से बहुत ज्यादा मदद की जरूरत है, यहां के विद्यार्थी शायद मुझे मदद पहुंचायेंगे। आप मुझे 1920 की याद दिला देते हैं। निश्चय ही वे बड़े शानदार दिन थे, निश्चय ही उन दिनों देश में, राष्ट्रीय चेतना का जो प्रखर उभार दिखायी देता था, वह अब दब गया है, लेकिन उस आंदोलन का असर अब भी बाकी है। यदि आप उस जोश के उभार को बनाये नहीं रख सके हैं, तो केवल आप ही उसके लिए दोषी नहीं हैं। स्वाभाविक ही है कि मैं देश की बदली हुई परिस्थितियों में, आप लोगों से वही काम करने को नहीं कहूंगा; पर मैंने तब स्वतंत्रता संघर्ष का जो रास्ता सुझाया था, वही अब भी भारतीयों द्वारा अपनाने योग्य सर्वोत्तम रास्ता है। यदि आप उस रास्ते पर बहुत लंबे समय तक नहीं चल

सके, तो उसके लिए शर्मिन्दा होने की जरूरत नहीं है। मुझे इस बात पर आश्चर्य नहीं है कि आप आगे बढ़ ही कैसे सके थे। जो कार्यक्रम मैंने बताया था, यदि वह अमल में लाया जाता तो सफलता मिलने में संदेह ही नहीं था, लेकिन अब मैं तब तक उस कार्यक्रम के अनुसार काम करने के लिए आपसे नहीं कहूंगा, जब तक कि उसके लिए उपयुक्त अवसर नहीं आ जाता। लेकिन इस बीच मुझे आपसे एक काम करने को कहना है और वह है खद्दर का काम। बड़े-छोटे, अमीर-गरीब, विद्वान-मूर्ख, विद्यार्थी या सरकारी कर्मचारी सभी लोग आसानी से इस काम में जुटकर इसे सफल बना सकते हैं। विद्यार्थी समुदाय इस काम के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

पंडित मालवीय ने हिन्दू विश्वविद्यालय में दृष्टांत प्रस्तुत करके आपका मार्गदर्शन कर दिया है। कल ही हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने मुझे एक हजार रुपये की थैली भेंट की है। आपने जो थैली भेंट की है वह मुजफ्फरपुर के विद्यार्थियों की संख्या को देखते हुए, उससे बहुत कम है। मैं विद्यार्थियों से आशा रखता हूं कि वे अपनी सारी आर्थिक और शारीरिक शक्ति से आंदोलन की सहायता करेंगे। मुझे आशा है कि मुजफ्फरपुर के विद्यार्थी देश के अन्य भागों के विद्यार्थियों से पीछे नहीं रहेंगे। आप न सिर्फ आज के दिन ही धन से सहायता करेंगे अपितु मुझे आशा है कि आप अपने जेब-खर्च से कुछ बचाते ही रहेंगे और नियमित रूप से आंदोलन की सहायता करते रहेंगे। आप लोग प्रांतीय खादी संगठन के मुख्यालय में रह रहे है; इसलिए आपको खद्दर के काम के सभी पहलुओं को सीख लेना चाहिए और अपने अवकाश का समय भी इस काम में लगाना चाहिए। मैं तो आपसे कहूंगा कि आप प्रतिदिनि कम-से-कम आधा घंटा सूत भी कातें। आप अपने लिए, पैसा कमाने के लिए, नहीं बल्कि गरीब और बेकार ग्रामीणों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए सूत कातें। परंतु यह सब कुछ आप तभी करें जब आपकी खादी में श्रद्धा हो। वैसी श्रद्धा प्राप्त करने के लिए आप मुझसे या अन्य किसी व्यक्ति से खादी का अर्थशास्त्र समझ लें।

यदि आप मानव हैं तो आप में अपने आसपास के मनुष्यों के प्रति सहानुभूति अवश्य होनी चाहिए। यदि आप में भाईचारे की इतनी भी भावना नहीं है, तो आप स्वराज पाने की आशा कैसे कर सकते हैं? भारत के सच्चे सपूत होने के नाते, आपका यह कर्त्तव्य है कि आप उन सब वस्तुओं को अस्वीकार कर दें, जो प्रत्येक भारतीयों को उपभोग के लिए सुलभ नहीं हो पाती। पर मैं आपको ऐसा करने के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं तो चाहता हूं कि आप खादी खरीदे और इस तरह हजारों बेकार देशवासियों और महिलाओं को काम और भोजन दें। विद्यार्थियों पर खादी पहनने का प्रतिबंध नहीं है।

जब राजगोपालाचारी को मद्रास के एक सरकारी कॉलेज में खद्दर पर बोलने के लिए आमंत्रित किया गया तब वे किस तरह प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों की सहायता से उस कॉलेज में खादी संघ चलाने में सफल हुए। आशा प्रकट है कि मुजफ्फरपुर में भी उस कॉलेज के दृष्टांत का अनुसरण किया जायेगा। खद्दर की अर्थ-व्यवस्था के सिद्धांत को समझने के लिए पुरस्कृत निबंध का पढ़ना आपके लिए लाभदायक होगा। मुझे आशा है कि पुस्तक को पढ़ चुकने के उपरांत खादी में आपकी आस्था हो जायेगी।

खद्दर पहनने के विरोध में केवल एक आपत्ति रह जाती है और वह है फैशन और आराम के प्रति मोह। मैं आपसे पूछता हूं कि यदि आप देश के लिए इतना छोटा-सा त्याग भी नहीं कर सकते, तो स्वराज पाने की आशा कैसे कर सकते हैं? आप सभी विद्यार्थियों से इसी स्थान पर निष्ठापूर्वक यह प्रतिज्ञा करने का आग्रह करता हूं कि आप सभी आज के बाद कभी सिवाय खादी के और कुछ इस्तेमाल नहीं करेंगे और यदि संभव हुआ तो अपने विदेशी कपड़ों को जला डालेंगे।

चूंकि यह विद्यार्थियों की सभा है, मैं एक और विषय के प्रति संकेत किये बिना इस भाषण को समाप्त नहीं कर सकता। वह विषय है ब्रह्मचर्य। मेरा विद्यार्थियों के साथ काफी संपर्क एवं संबंध रहा है। और मुझे इस बात का पता चला है कि विद्यार्थी समाज को चारित्रिक अधःपतन ने घेर रखा है। मैं इस संबंध में अपने विचार 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' और 'आत्मकथा' में प्रकट करता रहता हूं। परंतु मैं, आपका आगे और पतन न हो, इसलिए चेतावनी दे रहा हूं। आप लोगों के चरित्र में विकार का आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सारे देश का वातवरण भ्रष्ट विचारों से इतना भर गया है कि आप लोगों के लिए इसके प्रभाव से बचे रहना लगभग असंभव है। पाठ्य-पुस्तकें, सिनेमा, रंगमंच सब अनैतिकता के प्रभाव को फैला रहे हैं। यदि विद्यार्थियों को समय रहते चेतावनी न दी जाये, और आवश्यक सावधानी न बरती जाये, तो सारा देश नष्ट हो जायेगा। विद्यार्थियों को बचाने के लिए वीर स्वामी श्रद्धानंद ने आधुनिक शहरी जीवन के आकर्षणों से बहुत दूर हिमालय की तलहटी में गुरुकुल की स्थापना की थी। संभव है उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं में दोष रहे हों, परंतु आदर्श ठीक है और इस आदर्श को नष्ट नहीं होने देना चाहिए।

कुछ एक बमों और कारतूसों की मदद से स्वराज प्राप्ति का प्रयत्न केवल पागलपन से भरा एक विचार है। इन साधनों से जो स्वराज प्राप्त किया जायेगा, वह देश के गरीब लोगों के लिए नहीं होगा। गरीबों के लिए स्वराज लेने का प्रभावपूर्ण साधन केवल खादी है। इसीलिए मैं आपसे इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए कहता आ रहा हूं। आपको ब्रह्मचर्य का दृढ़ता से पालन करना चाहिए, जो सारी शक्ति का स्रोत है। केवल इस तरह, आप अपने आपको इस महान संघर्ष के लिए तैयार करने की आशा कर सकते हैं। भारत कर्मभूमि, धर्मभूमि और त्यागभूमि है। हिमालय इस तथ्य के साक्षी के रूप में खड़ा है। परंतु सब कुछ ब्रह्मचर्य के दृढ़ पालन पर निर्भर करता है। यदि आप एक बार फिर भारत में धर्म-राज्य की स्थापना करना चाहते हैं तो आपको सच्चाई, न्यायपरायणता और ब्रह्मचर्य की राह पर चलना होगा। ईश्वर के सिवाय अन्य किसी से डरना नहीं होगा और उसे अपना मित्र और पथ-प्रदर्शक समझकर बढ़ना होगा। ❑

(25 जनवरी'27 को मुजफ्फरपुर के विद्यार्थियों की सभा में प्रस्तुत भाषण)

आगे का युग नेतृत्व का नहीं गणसेवकत्व का

❑ **विनोबा**

मैं जरा एकांत में रहने वाला मनुष्य हूं। लेकिन जेल में तो समाज में ही रहना हुआ, और उससे सोचने का काफी मसाला मिल गया। वहां सब तरह के लोगों से संपर्क हुआ। उनमें कांग्रेस वाले थे, समाजवादी थे, फॉर्वर्ड ब्लॉक वाले और दूसरे भी थे। देखा कि ऐसा कोई खास दल नहीं, जिसमें दूसरे दलों की तुलना में अधिक सज्जनता दिखायी देती हो। जो सज्जनता गांधी वालों में दिखायी देती है, वही दूसरों में भी दिखायी देती है, और जो दुर्जनता दूसरों में पायी जाती है, वह इनमें भी पायी जाती है। जब मैंने देखा कि सज्जनता किसी एक पक्ष की चीज नहीं, तब सोचने पर इस निर्णय पर पहुंचा कि किसी खास पक्ष या संस्था में रहकर मेरा काम नहीं चलेगा। सबसे अलग रहकर सज्जनता की ही सेवा मुझे करनी चाहिए।

जेल से छूटने के बाद यह विचार मैंने गांधीजी के सामने रखा। उन्होंने अपनी भाषा में कहा—''तेरा अभिप्राय मैं समझ गया। तू सेवा करेगा, लेकिन अधिकार नहीं रखेगा। यह ठीक ही है।'' इसके बाद जिन-जिन संस्थाओं में मैं था, उनसे इस्तीफा देकर अलग हो गया। वे संस्थाएं मुझे प्राण-समान थीं। उनके उद्देश्यों और कार्यक्रमों को अमल में लाने की कोशिश बरसों से मैं करता आया था। उनसे अलग होते समय दुख जरूर हुआ, लेकिन आनंद का भी अनुभव किया, क्योंकि उन संस्थाओं की मदद तो मैं करने वाला ही था।

गांधीजी की मृत्यु के बाद सेवाग्राम में हुई सभा में हमने तय किया कि अपनी संस्था को किसी व्यक्ति का नाम देना ठीक नहीं होगा। इसलिए 'गांधी-संघ' जैसे नामों के बदले 'सर्वोदय-समाज' ही नाम रखा गया।

'संघ' न कहते हुए जो 'समाज' शब्द रखा है, वह साहित्यिक दृष्टि से नहीं, बल्कि इसके पीछे एक विचार है। 'संघ' शब्द में विशिष्ट अर्थ है। उसमें व्यापकता की कमी है। इसके विपरीत 'समाज' व्यापक है और 'सर्वोदय' शब्द के कारण उसकी व्यापकता परिपूर्ण हो जाती है। अगर 'संघ' नाम रखा जाता तो वह छोटी-सी संस्था बन जाती। फिर उसमें कोई लिया जाता, तो कोई न भी लिया जाता है। उसके नियम बनते, अनुशासन रखा जाता और उसे न मानने वालों के विरुद्ध अनुशासन-भंग की कार्रवाइयां होतीं। संघ तो एक ऐसी संस्था है, जिसमें विशिष्ट व्यक्तियों को ही अवसर मिलता है। उसमें वह व्यापकता और स्वतंत्रता नहीं होती, जो मनुष्य के विकास के लिए जरूरी है।

कुछ लोग हमारे सर्वोदय-समाज की योजना की रचना को 'लूज ऑर्गेनाइजेशन' यानी शिथिल रचना कहते हैं। रचना को अगर हम शिथिल करें तो कोई काम नहीं बनेगा। इसलिए रचना शिथिल नहीं होनी चाहिए। पर यह शिथिल रचना न होते हुए 'अ-रचना' है, यानी केवल विचार के आधार पर हम खड़े रहना चाहते हैं। हम किसी को आदेश नहीं देते जिसे वे बिना समझे-बूझे ही अमल में लायें। साथ ही हम किसी का आदेश कबूल भी नहीं करते, जिस पर बिना सोचे और बिना पसंद किये हम अमल करते जायें। बल्कि हम तो सलाह-मशविरा करते हैं।

मैं अपनी इस रचना में जितना ताकत देखता हूं, उतनी और किसी कुशल, स्पष्ट और अनुशासनबद्ध रचना में नहीं देखता। अनुशासनबद्ध दंडयुक्त रचना में शक्ति नहीं होती, यह बात नहीं। लेकिन वह शक्ति नहीं होती, जो शिवशक्ति है। जब मैं इस दृष्टि से सोचता हूं तो बुद्ध भगवान ने भिक्षु-संघ क्यों बनाये, और शंकराचार्य ने यति-संघ क्यों बनाए—इसका रहस्य खुल जाता है। फिर भी उन संघों के जो अनुभव आये हैं, उनके गुण-दोषों की तुलना कर मैंने अपने मन में यह निर्णय लिया है कि हम ऐसे संघ नहीं बनायेंगे; क्योंकि उनमें उनके गुणों से उनके दोष अधिक होते हैं।

लोग आक्षेप करते हैं कि ऐसे ढीले-ढाले संगठन से क्या होगा? मेरे खयाल से वह आक्षेप सही भी है। अगर हम कोई यंत्र चलाना चाहें, तो उसे कसा हुआ होना चाहिए। यदि घर्षण के डर से हम उसे ढीला रखें तो वह यंत्र काम नहीं देगा। इसलिए यदि यंत्र चलाना है तो उसे चुस्त रखा जाये और यह ध्यान रखकर कि उसमें घर्षण होगा, उसमें स्नेहन के लिए तेल डाला जाये।

सर्वोदय समाज के लिए किसी तरह की संघटना की कल्पना नहीं है, इसलिए यह अर्थ नहीं कि हमारा काम बिखरा हुआ होना चाहिए। हमारे पास जो संस्थाएं हैं और जो अलग-अलग काम करती हैं, उन सबका संगठन हम करने जा रहे हैं। उसी में से 'सर्व सेवा संघ' पैदा हो रहा है। हम चाहते हैं कि वही हमारे कार्य का यंत्र हो, और यह 'सर्वोदय समाज' सहविचार, सहचिंतन, तत्त्व-संकीर्तन और नाम जप का साधन बने। यह यंत्र है ही नहीं। यह अनियंत्रित विचार है।

इसे हम विश्व में फैलाना चाहते हैं। जिसे सारे विश्व में फैलना होता है, सह सदेह नहीं विदेह ही हो सकता है। इसीलिए हम उसकी देह नहीं बना रहे हैं। अगर हम उसे सदेह बनायें तो काम जरूर होगा; लेकिन वह विश्वव्यापी नहीं होगा।

लोग मुझसे पूछते हैं कि आप किस प्रकार इस सर्वोदय समाज का संगठन करने जा रहे हैं? मैं जवाब देता हूं कि देश में आज कई संस्थाएं हैं। उनमें और एक संस्था बढ़ाना मेरा लक्ष्य नहीं है। मैं यही चाहता हूं कि जीवन को दिशा देने वाला एक विचार अपने जीवन में दाखिल करें और दूसरे भाई-बहनों को वह समझायें। यदि हर व्यक्ति के जीवन में वह विचार दाखिल होगा तो सहज ही आग जैसा फैल जायेगा। उसके बदले यदि संस्था खड़ी की जाये तो उसमें स्पर्धा अभिनिवेश आदि का प्रवेश हो सकता है। मैं यह नहीं चाहता। समाज अच्छी तरह संगठित होना चाहिए। परिवार में भी एक समाज रहता है और वह सहज बना होता है। वैसा ही होना चाहिए। फिर भी परिवार में सिर्फ परिवार तक सोचने की वृत्ति रहती है, इसलिए उसमें संकुचितता आ जाती है। वह बात छोड़ दें, सहजता की बात ही लें तो मेरी कल्पना समझ में आ सकती है।

मैं मानता हूं कि जब लोग पांथिक बंधनों के कारण एक जगह आते हैं तो उनकी कल्याण करने की शक्ति नहीं बढ़ती। जब वे सहज बंधु-भावना से एकत्र होते हैं, स्थूल संबंधों को गौण मानते हैं, मत की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्त्व देते हैं, बाह्य कर्म की अपेक्षा अंतरवृत्ति को महत्त्व देते हैं, मनुष्य को मनुष्य के नाते पहचानते हैं, तब कल्याण करने की शक्ति बढ़ती है।

मैंने ऐसी कई संस्थाएं देखी हैं, जिनका आरंभ तो अच्छे उद्देश्य से हुआ, लेकिन आगे उनके कार्यों से ही दोष उत्पन्न होने लगे। फिर उन दोषों का बचाव किया जाता है। वे छिपाकर भी रखे जाते हैं। फिर वृत्ति बदल जाती है और टुकड़े होने लगते हैं। मुझे टुकड़े नहीं चाहिए, अखंड आनंद का अनुभव मुझे लेना है।

मेरा जितना विश्वास सत्य का जप करने में है, उतना संगठन में नहीं। यह नहीं कि संगठन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। परंतु मनुष्य शुभ विचार जपता और रटता चला जाये तो उसके साथ जरूरी संगठन ऐसे ही पैदा हो जाता है। अगर मैं संगठन बनाता तो मैं संकुचित बन जाता। किन्तु मेरा संगठन नहीं है, इसीलिए मैं व्यापक हूं, दुनिया का अंश हूं। दुनिया में और अपने में मैं किसी तरह का भेद ही नहीं मानता। जो अपने अलग-अलग घर और अलग-अलग संस्था बनाकर बैठे हैं, उनसे मैं कहता हूं कि आपके घर में और संस्था में मेरी हवा का प्रवेश होने दो तो आपका घर शुद्ध होगा।

सत्यनिष्ठा सर्वोदय की बुनियाद है। कुछ लोग कहते हैं कि इससे सर्वोदय समाज में अधिक लोग नहीं आयेंगे। मैं कहता हूं कि ऐसा कहने वाला भगवान की जगह लेना चाहता है पर मैं नहीं ले सकता। आखिर सभी मनुष्यों में शुभ प्रेरणा क्यों पैदा नहीं होगी? होगी, ऐसी ही मैं आशा रखूंगा। लेकिन मान लीजिए कि ऐसी प्रेरणा किसी को भी न हुई और सर्वोदय समाज हवा में ही रह गया, तब भी यह अव्यक्त कल्पना विश्व-कल्याण करेगी। इससे विपरीत, सत्यनिष्ठा-विहीन बहुत बड़ी संख्या किसी समाज में शामिल हुई तो भी विश्व-कल्याण की दृष्टि से उसका तनिक भी उपयोग नहीं होगा।

सर्वोदय-समाज का प्रत्येक सेवक सर्व-तंत्र-स्वतंत्र है। उसे किसी प्रकार का बंधन नहीं। अपनी जगह बैठकर वह अकेला काम कर सकता है। आवश्यक हुआ तो संगठन बनाकर भी काम कर सकता है।

सर्वोदय समाज एक वैचारिक मंडल है, तो सर्व सेवा संघ विशेषज्ञों की आयोजक और कार्यकारी अखिल भारतीय संस्था है। सर्वोदय समाज का प्रत्येक व्यक्ति एक 'सर्वाधिकारी सेवक' है। जहां सर्वाधिकार और सेवकत्व दोनों का संगम होता है, वहां अपने-आप सभी दोषों का निरसन और सभी गुणों का आवाहन हो जाता है।

सर्वोदय विचार की यही खूबी है कि इसमें स्वतंत्र और विभिन्न विचारों का पूरा-पूरा अवसर है। वह विशिष्ट व्यवस्था या विशिष्ट बाह्य आकार का आग्रह नहीं रखता। वह संगठन को ही शक्ति मान नहीं बैठता, पर सत्य की शक्ति पहचानता है। वह इस भ्रम में नहीं पड़ता कि अशक्ति संगठित होते ही शक्ति बन जाती है। आलसी लोगों ने शक्तिशाली बनने का यह सरल तरीका खोज निकाला है। यदि रोगों का संग्रह करने से ही स्वास्थ्य बनता तो न वैद्यों की जरूरत पड़ती, न औषधों की और न पौष्टिक अन्न की ही! पर हिंसा में यह सब खप जाता है। दस लाख की फौज खड़ी करते ही राष्ट्र बलवान बन जाता है। कहा जाता है कि सिपाही जीत गये तो राष्ट्र भी जीत गया! पर यह नहीं कहा जा सकता कि सिपाही को भोजन मिलते ही राष्ट्र को भी भोजन मिल गया!

सर्वोदय संगठन के पीछे नहीं पड़ता। इसमें भी उसकी अपनी एक दृष्टि है। सर्वोदय का सेवक आवश्यक प्रतीत होने पर स्थानिक संगठन बना सकता है। वह संगठन विचारनिष्ठ ही होगा। उसमें प्रत्येक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से पूर्ण परिचय रहेगा। दंभ के लिए अवसर ही नहीं रहेगा। उसमें अभिमान घुस ही न पायेगा। जब छोटे पैमाने पर कोई चीज बनती है, तो उस समय इन दोषों से बचना सुकर हुआ करता है। किन्तु दम्भ और अभिमान इतने सूक्ष्म दोष हैं कि चाहे जहां प्रवेश कर सकते हैं। यदि सेवक को दिखाई पड़े कि उसके छोटे से संगठन में भी ये दोष घुसने लगे हैं तो वह उस संगठन को तोड़ भी डालेगा। वैसे तो वह ऐसा प्रसंग आने ही न देगा। किन्तु जो भी कुछ वह करेगा, उसका सारा उत्तरदायित्व उसी पर रहेगा।

...क्रमशः अगले अंक में

5 जून : संपूर्ण क्रांति दिवस पर विशेष

गतांक से आगे....

भारत की नियति को पुनर्परिभाषित करने का कार्यक्रम

❑ जयप्रकाश नारायण

आज भारतीय राजनीति में स्थापित राजनीतिक दलों की करनी से मौजूदा संसदीय व्यवस्था पर गहरे संदेह पैदा हुए हैं। 1974 के जेपी आंदोलन से जो देश में राजनैतिक, सामाजिक चेतना जगी और बाद में अन्ना आंदोलन ने देश में थोड़ी ही सही एक जागरूकता पैदा की, वह कहीं ठिठक गयी लगती है। आगे की दिशा क्या हो, यह भ्रम बना हुआ है। लोकनायक जयप्रकाश का यह साठ साल पुराना आलेख नई दिशा दिखा सकता है। –सं.

कुछ समय के लिए गांव को ऊपर से सहायता देने की आवश्यकता हो सकती है; परंतु उसका दायित्व स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए और सहायता की मांग गांव के द्वारा निश्चयात्मक शब्दों में और, गांव के सामूहिक प्रयास से जो किया जा चुका है या किया जाने वाला है, उसके पूरक के तौर पर, की जानी चाहिए। ऊपर से कोई सहायता तब तक नहीं दी जानी चाहिए, जब तक गांव यह सिद्ध नहीं कर दे कि वह अपनी सहायता आप करने की दिशा में सर्वोत्तम प्रयास कर चुका है या करने के लिए प्रस्तुत है। अंततः ऐसी सहायता निकटतम वृहत्तर सामुदायिक संगठन, क्षेत्रीय समुदाय से प्राप्त होंगी; परंतु आरंभ में वह राज्य-सरकार से मिलेगी। सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं को बड़ी संख्या में, गांवों में जाना होगा, इसलिए नहीं कि वहां जाकर वादे करें, बल्कि आत्म-निर्भरता का प्रचार करें और तद्नुसार आचरण करने में उनकी सहायता करें। यह आवश्यक नहीं है कि राज्य व्यवस्था के शेष अंग का विकास तब तक रुका रहे जब तक गांव और कस्बे, यहां दर्शाए गये रूप में, वास्तविक समुदाय नहीं बन जाते। हमारा प्रयास सभी स्तरों पर एक साथ ही शुरू होना चाहिए, अन्यथा वह किसी स्तर पर सफल नहीं होगा।

राजनीतिक ढांचे का अगला स्तर स्पष्टतः क्षेत्रीय समुदाय का स्तर होगा। जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है, इस स्तर पर, बलवंतराय मेहता समिति की अनुशंसाओं के अनुसार, ग्राम-पंचायतों का पंचायत समिति में एकीकृत करना होगा; इस भेद के साथ कि समिति के स्वरूप और उसके कृत्य एक स्वायत्त स्वशासी समुदाय के जैसे होंग। तद्नुसार समिति को अपनी क्षमता के अंदर कुछ करने के अधिकार और दायित्व होने चाहिए। जैसा कि सुझाया जा चुका है, पंचायत समिति ऊपर परिभाषित इष्टतम समुदाय को अपने में समावेष्टित करते हुए देश के राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन में, विशेषकर नियोजन एवं विकास की प्रक्रिया में, अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे।

एक और महत्त्वपूर्ण विषय पंचायत समिति के निर्माण से संबंधित है, जिस पर मैं बल देना चाहता हूं। समिति का चुनाव ग्राम पंचायतों के द्वारा होना चाहिए, न कि उनके सदस्यों द्वारा। पहली नजर में यह 'छह' और 'आधा दर्जन' के भेद जैसा दीखेगा। परंतु बात ऐसी नहीं है। इस भेद में सामुदायिक जीवन का एकाड़ा सिद्धांत निहित है। ग्राम पंचायत का प्रतिनिधित्व ग्राम पंचायत ही एक संगठन के रूप में करती है, न कि उसके सदस्य करते हैं। बदले में पंचायत समिति ग्राम पंचायतों की प्रतिनिधि होगी और इस रूप में वह ग्राम पंचायतों का ही प्रतिनिधित्व करेगी, न कि उसके सदस्यों का। पिछले प्रकरण में वर्णित सामाजिक संगठन की पद्धति का अनुसरण करते हुए, राजनीतिक संगठन बुनियाद से एक-एक मंजिल कर ऊपर उठेगा। पंचायत समिति के ऊपर दूसरी मंजिल जिला परिषद (या जो नाम इसे दिया जाये) की होगी, जिसका निर्माण जिले की पंचायत समिति के एकीकरण से होगा और फिर ये समितियां ही, अपने संगठित रूप में, प्रतिनिधियों का चुनाव करेगी, न कि उनके सदस्य करेंगे। बदले में जिला परिषदों को अपनी क्षमता के अंदर सब कुछ करने के लिए सभी अधिकार और दायित्व होंगे।

इस ढंग से, राज्य की सभी जिला परिषदें मिलकर राज्य (विधान) सभा का निर्माण करेंगी; इसी रीति से राज्य सभाएं मिलकर लोकसभा का निर्माण करेंगी। इस प्रकार प्रत्येक स्तर की राजनीतिक संस्था निम्नतर स्तर की सभी संस्थाओं का एकीकृत रूप होगी। आगे बढ़ने के पूर्व, मैं एक बात की ओर संकेत करना चाहूंगा। पूर्ववत चर्चा के अनुसार यह स्पष्ट है कि प्रश्न केवल 'स्थानीय' स्वशासन का नहीं है, और न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चुनावों का है। यह मान लेना गलत होगा कि यदि 'स्थानीय संस्थाओं' को अधिक अधिकार दे दिये जायें तथा प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली के स्थान पर अप्रत्यक्ष प्रणाली प्रतिष्ठित कर दी जाये और सामाजिक संगठन का शेष अंग ज्यों का त्यों छोड़ भी दिया जाये, तो परिणामस्वरूप यहां प्रतिपादित ढंग

की राज्य व्यवस्था का निर्माण हो जायेगा। इस निबंध में जो राज्य व्यवस्था प्रस्तावित की गयी है, वह समाज के वर्तमान शरीर पर उपरोपण के तुल्य नहीं होगी।

मेरा लक्ष्य भारत का एक नया संविधान प्रस्तुत करना नहीं है। मैंने केवल कुछ आधारभूत सिद्धांतों की चर्चा कर अभीष्ट सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन का सामान्य रूप प्रकट करने का प्रयास किया है। अपितु, स्पष्टीकरण के तौर पर कुछ विस्तार से बातों पर विचार कर लेना उपयोगी होगा।

पहले, विभिन्न स्तरों पर कार्यपालिका के प्रश्न को लेता हूं। प्रारंभिक समुदाय के स्तर पर पंचायत कार्यपालिका होगी; वह अपने सदस्यों को अथवा छोटी-छोटी समितियों को विभिन्न कार्यपालक कृत्य आवंटित करेगी। क्षेत्रीय समुदाय के स्तर पर पंचायत समिति कार्यपालिका होगी और वह समितियों के माध्यम से कार्य करेगी। जिला समुदाय के स्तर पर जिला परिषद कार्यपालिका होगी और वह भी समितियों के माध्यम से कार्य करेगी। प्रादेशिक समुदाय के स्तर पर प्रांत-सभा ऐसी समितियां नियुक्त करेगी जो कार्यपालिकाएं होंगी और उक्त सभा के प्रति उत्तरदायी होंगी। इसी प्रकार राष्ट्रीय समुदाय के स्तर पर राष्ट्रसभा समितियां नियुक्त करेगी जो कार्यपालिकाएं होंगी और राष्ट्रसभा के प्रति उत्तरदायी होंगी।

विधायन-संबंधी अधिकारों का प्रयोग कौन करेगा, यह प्रश्न किया जा सकता है। मेरी कल्पना के अनुसार, प्रत्येक समुदाय को अपने आंतरिक कार्यों के प्रबंध के लिए नियमों-विधियों का निर्माण करने का अधिकार होगा, बशर्ते कि वे उसी स्तर के अन्य समुदायों के हितों तथा उच्चतर स्तरों के समुदायों के नियमों-विरोधों से टकरायें नहीं।

राजनीति की अभी अधिक अच्छी पद्धति की खोज करनी है

मात्र मताधिकार पर्याप्त नहीं

राजनीति का जो विकास पिछली सदियों में हुआ और उसने मानव-समाज को जिस स्थान पर लाकर पहुंचा दिया, दुर्भाग्य से हम मानने लगे कि अब उससे कोई आगे रास्ता नहीं है। *दुनिया में आज मुख्यतः संसदीय जनतंत्र की प्रथाएं चल रही हैं, परंतु उससे आगे, उससे भी अधिक अच्छी पद्धति कोई हो सकती है या नहीं, उस तरफ देखने का और उस दिशा में प्रयोग करने का काम अभी नहीं हुआ है।*

चुनाव आदि की राजनीति के पीछे जितनी शक्ति खर्च होती है, उससे आधी शक्ति भी यदि नये मार्ग की खोज के पीछे खर्च की जाये, तो वातावरण कुछ भिन्न ही बनेगा। मैं यह मानता हूं कि आज की मौजूदा शासन-व्यवस्था और उसके दोषों के संबंध में हमें गंभीरता से सोचना चाहिए तथा उन दोषों को दूर करने के उपाय ढूंढ़ने चाहिए। दलबंदी के झगड़े, सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण के बदले स्वार्थ की खींचातानी, सिद्धांत को किनारे रख व्यक्तिगत या निहित स्वार्थ के लिए होने वाले दल-बदल, अवसरवादी गठबंधन, दलों, प्रतिनिधियों और प्रधानों का स्वेच्छाचार, पैसों का बेहिसाब खर्च, घूसखोरी—यह सब तो सहज ही हमारे सामने आता रहता है, किन्तु इसके बावजूद हमें अधिक गहराई में जाना चाहिए।

संसदीय लोकतंत्र के कई रूप हैं, जिसमें से एक इस देश में चल रहा है। इसकी थोड़ी परीक्षा हम कर लें। यह लोकतांत्रिक ढांचा चुनाव-प्रथा और मताधिकार पर आधारित है। मताधिकार का अधिकार एक जमाने में बड़ा क्रांतिकारी विचार रहा है। एक जमाने में तो वयस्क मताधिकार एक क्रांति-घोष ही बन गया था और लोग मानते थे कि उससे जनता का राज हो जायेगा, धरती पर स्वर्ग उतर आयेगा, लेकिन हम देख रहे हैं कि उसके द्वारा समाज कोई बहुत आगे नहीं बढ़ पाया। फिर भी, वह निकम्मी चीज है और उसका हम तिरस्कार करें—ऐसी बात नहीं है। लेकिन जब हम आगे जाने की सोचते हैं, तब हमें जरूर देखना और समझना चाहिए कि वोट ही काफी नहीं है।

मतदाता सबकुछ सोच-समझकर मतदान कर देता है, ऐसी स्थिति तो न यहां है, न दुनिया में ही। एक बार एक बुढ़िया मतदान केन्द्र के अंदर रखी मतदान-पेटी की पूजा करने लगी। पूछा, तो उसने कहा, 'मैं गांधीजी की पूजा कर रही हूं।' ऐसे ही मतदाताओं के मत से राज्य की स्थापना होती है, तो वे क्या कोरिया, हिन्दचीन, और कश्मीर के प्रश्न समझेंगे, उन्होंने तो विदेशों का नाम भी नहीं सुना, फिर विदेश नीति क्या समझेंगे।

अमेरिका का अपना निजी अनुभव बतलाऊं। विश्वविद्यालय द्वारा सामान्य ज्ञान के पूछे गये प्रश्नों के जवाब में जानने को मिला कि सौ में सत्रह प्रौढ़ अमेरिकन अपने राष्ट्रपति का नाम तक नहीं जानते थे। बिहार के देहातों की सभाओं में कृपलानीजी के सवाल के जवाब में लोग जवाहरलालजी को 'भारत का राजा' बताते थे, और 'उनके बाद उनके बेटा राजगद्दी पर बैठेगा'—ऐसा कहते थे।

दुनिया की जनता की यह स्थिति है। फिर भी हम यह मानते हैं कि हमारे वोट पर खड़ा संसदीय लोकतंत्र बहुत अच्छी तरह चल रहा है। राज चलाने वाले मानते हैं कि वयस्कों को वोट का अधिकार दे दिया, तो आदर्श राज्य-व्यवस्था हो गयी! जबकि सारे वोटर न तो एक स्तर के होते हैं, न राजनीति-अर्थशास्त्र आदि के प्रश्न ही वे समझ पाते हैं। जनतंत्र का यह ढोंग ही तो है!

–जेपी

उच्चतर सामुदायिक संस्थाएं अपने आवंटित क्षेत्रों में विधि-निर्माण करेंगी। शैक्षणिक एवं आर्थिक संघ जैसी अन्य सामुदायिक संस्थाएं भी नियमों और विधियों का निर्माण कर सकेंगी। ये समितियां छोटी सुकार्यशील संस्थाएं होंगी, जिन्हें ऐसे विशेषज्ञों को सहयोजित करने का अधिकार होगा जो उनके कार्य में पूर्ण योगदान करेंगे, परंतु मतदाता के अधिकार से वंचित होंगे। प्रत्येक समिति का एक अध्यक्ष और एक मंत्री होगा, परंतु अपने पद संबंधी कृत्य करने के अलावा उन्हें कोई विशिष्ट अधिकार या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होगा। प्रत्येक समिति उस सामान्य सभा के प्रति उत्तरदायी होगी जो उसे नियुक्त करेगी।

विभिन्न समितियों के कार्यों को समन्वित करने के लिए एक समन्वय समिति होगी जिसमें प्रत्येक समिति का एक-एक प्रतिनिधि होगा; वह प्रतिनिधि संबंधित समिति द्वारा समय-समय पर किये गये निर्णयों के अनुसार, समिति का अध्यक्ष, मंत्री या कोई सदस्य हो सकता है। समन्वय समिति पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद होगी, जिनकी बैठकें नियत समयों पर हुआ करेंगी।

प्रत्येक समिति का सामूहिक दायित्व होगा। प्रतिनिधिक सामुदायिक संस्थाओं की बैठकें समय-समय पर होंगी, परंतु समितियां सदैव सत्रस्थ रहेंगी। नीतिगत प्रश्न, किसी समिति या व्यक्तिगत सदस्य के प्रस्ताव पर, प्रातिनिधिक संस्थाओं द्वारा निर्णीत होंगी। ये समितियां नीतियों को क्रियान्वित करेंगी।

इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तरों पर आज के समान कोई मंत्री, मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री नहीं होंगे। उपर्युक्त कथन के अनुसार, शासन का संचालन प्रातिनिधिक संस्थाओं की समितियां करेंगी। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री का पद, जो एक व्यक्ति में अत्यधिक अधिकार केन्द्रित करता है, अलोकतांत्रिक है और उसमें अधिनायकवाद के विस्फोटक तत्त्व निहित हैं। इसके अतिरिक्त, उसमें से 'वीर-पूजा' या 'व्यक्ति-पूजा' जैसे खतरनाक मनोवैज्ञानिक परिणाम उत्पन्न होते हैं। विभिन्न प्रातिनिधिक सामुदायिक संस्थाओं के अध्यक्ष का कोई प्रशासनिक कृत्य नहीं होगा। परंतु उसका दायित्व यह देखना होगा कि जिस प्रातिनिधिक संस्था का वह अध्यक्ष है, वह समुचित रूप से निर्धारित नियमों के अनुसार कार्य करती रहे। संबंधित समुदाय के लोकतांत्रिक उपकरण के विफल हो जाने की स्थिति में उसे असाधारण आपात अधिकार प्राप्त होंगे। राष्ट्रसभा के अध्यक्ष विगत अनुच्छेद में उल्लिखित अधिकारों से संपन्न होने के अतिरिक्त, सशस्त्र सेना के मुख्य सेनापति होंगे और राष्ट्र की प्रतिरक्षा के लिए राष्ट्रसभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। उनकी सहायता के लिए एक प्रतिरक्षा समिति होगी, जिसके वे अध्यक्ष होंगे।

प्रशासन के कार्य में समितियों की साहयता वेतन प्राप्त असैनिक सेवक करेंगे। प्रत्येक स्तर पर संबंधित प्रातिनिधिक संस्था द्वारा उस उद्देश्य के लिए स्थापित तत्स्थानी अधिसत्ता, प्रातिनिधिक संस्था द्वारा निर्धारित शर्तों के आधार पर, असैनिक सेवकों की नियुक्ति करेगी। समुदायों को अपने इन सेवकों को नियुक्त एवं पदच्युत करने के सर्वोच्च अधिकार होंगे। प्रारम्भिक समुदाय के स्तर पर, असैनिक सेवक अवैतनिक, अंशकालिक या पूर्णकालिक स्वयंसेवक हो सकता है। उच्चतर स्तरों पर भी अवैतनिक असैनिक सेवक हो सकते हैं। यहां द्रष्टव्य है कि सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन की विकेन्द्रित रचना के कारण, प्रशासन ऊपर से बोझिल तथा आज के समान जनता से दूर हटा हुआ नहीं रहेगा। उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में, वर्तमान समय की शायद सबसे गंभीर समस्या अधिकारितंत्र एवं भ्रष्टाचार की समस्या पर कुछ क्षणों के लिए दृष्टिपात करना उपयोगी होगा। कुछ लोग सोचते हैं कि भ्रष्टाचार की समस्या का एक हल अधिनायकतंत्र है। परंतु अधिनायकतंत्र भी अधिकारितंत्र की समस्या का कोई समाधान नहीं है। इसके विपरीत, हम जानते हैं कि अधिनायकतंत्र, अन्य शासनतंत्रों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से, अधिकारितंत्र का अभिजनन करता है और इसके अतिरिक्त उसे सर्वशक्तिमान बनाता है।

भ्रष्टाचार के संबंध में भी यह सामान्यतः महसूस नहीं किया जाता कि अधिनायकतंत्री व्यवस्थाओं में भी भ्रष्टाचार भयानक पैमाने पर होते हैं—केवल उनका रूप बदल जाता है। रिश्वतखोरी तथा अन्य ऐसी बुराइयों के अर्थ में भ्रष्टाचार चाहे न हों, परंतु उनके बदले वहां झूठ, फरेब, षड्यंत्र, आतंक, मानवीय मस्तिष्क को गुलाम बनाने की कोशिश, मानवीय प्रतिष्ठा की हत्या आदि के रूप में अधिक भयानक भ्रष्टाचार होते हैं। ये सारी बातें रिश्वतखोरी और ऐसी अन्य बुराइयों की अपेक्षा मनुष्य जीवन को कहीं अधिक भ्रष्ट करती है। अधिकारितंत्र तथा भ्रष्टाचार, दोनों समस्याओं का एकमात्र सही समाधान जनता का प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक परिवेक्षण तथा नियंत्रण है। उपर्युक्त कथन के अनुसार प्रारंभिक समुदायों में वेतन-प्राप्त असैनिक सेवकों की आवश्यकता नहीं है। बृहत्तर समुदायों में, असैनिक सेवक संबंधित सामुदायिक संस्था के प्रत्यक्ष नियंत्रण एवं परिवेक्षण के अंदर रहेंगे। इसके अलावा, यह स्पष्ट समुदायों के ही हित में होगा कि प्रशासन का खर्च यथासंभव कम-से-कम रहे। अतः अधिकारितंत्र के अनियंत्रित खर्च पर स्वाभाविक रोक रहेगी। इस प्रकार ज्यों-ज्यों स्वशासन विकसित होगा, असैनिक सेवक या तो अनावश्यक हो जायेगा अथवा निकटतम निर्वाचित सत्ताधिकारी के अधीन रहेगा।

अपितु, इस सारी योजना में एक खतरा निहित हो सकता है। यदि स्वयं सामुदायिक प्रातिनिधिक संस्थाएं और उनके सदस्य भ्रष्ट हो जायें, तो इस योजना में भ्रष्टाचार पर बहुत

कम रोक रह जायेगी। मैं स्वीकार करता हूं कि आरंभ में यह बिल्कुल संभव है और ऐसा सहज रूप से हो सकता है। परंतु मैं यह मानने से इनकार करता हूं कि ऐसी स्थिति लंबे समय तक कायम रहेगी। यदि जनता को वास्तविक दायित्व सौंप दिया जाये, जिससे कि वह स्पष्ट रूप से देख-समझ सके कि उसके कष्टों का कारण अपने काम की व्यवस्था के लिए उसके द्वारा ही गलत ढंग के लोगों का चयन है; तो फिर जनता उसके प्रतिनिधियों तथा असैनिक सेवकों के बीच इतना घनिष्ठ और प्रत्यक्ष संबंध रहेगा कि जनता को स्थिति सुधारने में बहुत समय नहीं लेगा। इस संबंध में, द्रष्टव्य है कि लोक-प्रतिनिधियों तथा असैनिक सेवकों की योग्यताओं पर गंभीरतापूर्वक विचार कर लेना उपयोगी होगा। डॉ. भगवानदास ने अपनी 'स्वराज्य की संक्षिप्त योजना' विषयक टिप्पणियों में विधायकों की योग्यता संबंधी प्रश्न का पूरा एक प्रकरण लिखा है। मैं समझता हूं, उनके विचार गंभीर चिन्तन के योग्य हैं। तथापि, यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अंततः स्वयं जनता की सुबुद्धि ही इस बात की गारंटी हो सकती है कि उसके प्रतिनिधि और सेवक सही किस्म के होंगे।

इस निबंध में यह विचार करना संभव नहीं है कि प्रशासन के कौन विभाग किस समुदाय को सौंपने होंगे। मैंने इस सामान्य सिद्धांत पर बल दिया है कि प्रत्येक समुदाय को उसकी स्वाभाविक क्षमता के अंदर सब-कुछ करने के अधिकार होने चाहिए। जनता में जो सामान्य जड़ता है, उसे देखते हुए यह काफी नहीं होगा। अधिकार ऊपर से भी 'प्रदान' करने होंगे। अतः मैं कहना चाहता हूं कि मैं पूरे साहस के साथ यथासंभव अधिकतम अधिकार समुदायों को दिये जाने के पक्ष में हूं। संभवतः, कुछ अधिकारों का उपयोग ही नहीं होगा, और कुछ का दुरुपयोग भी हो सकता है। लेकिन जनता अनुभव से सीखेगी और स्वयंसेवी सामाजिक कार्यकर्ताओं का कर्तव्य होगा कि सीखने में उसकी सहायता करें।

अतः मेरा सुझाव है कि आरक्षी, न्याय, करारोपण, समाहरण, समाज-सेवाएं, नियोजन—सब कार्यों को यथासंभव अधिकतम सीमा तक विकेन्द्रित कर दिया जाये। ज्यों-ज्यों जनता सीखेगी और आत्मविश्वास प्राप्त करेगी, त्यों-त्यों विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया, ऊपर से शुरू होने के बदले, सामान्यीकृत होकर नीचे से काम करना आरंभ करेगी। यह नई राजनीतिक रचना, जो यहां परिकल्पित की गयी है, एक दिन में नहीं बनेगी; इसका कारण और कुछ नहीं तो यह है कि पहले बुनियाद डालनी होगी और उस पर नीचे से एक-एक मंजिल कर, रचना खड़ी होगी। इसके साथ ही आर्थिक रचना का भी निर्माण करना होगा। यह सब करने में समय लगेगा; इसलिए अनिवार्यतः एक संक्रमण का काल होगा।

ग्राम-पंचायतों की स्थापना देश के अधिकांश भाग में हो चुकी है। इस निबंध में प्रस्तुत किये गये सिद्धांतों के अनुसार इन सबको नया रूप देना होगा। अगला चरण पंचायत समितियों की स्थापना का है। यह भी, जैसे राजस्थान में, शुरू किया जा चुका है। परंतु इसके पीछे जो कल्पना है, उसमें मौलिक परिवर्तन करना है। पंचायत समितियों की स्थापना के बाद जिला परिषदों का गठन करना होगा। साथ-साथ आर्थिक संस्थाओं का संगठन भी करना होगा। नियोजन तथा शिक्षा की संपूर्ण व्यवस्था को ही पुनर्संस्कारित करना होगा। ग्राम पंचायतों का चुनाव सामान्य सहमति या भाग्य-पत्रक निकालने की विधि से किया जाये, इस विचार का प्रतिपादन मैंने किया है। स्वभावतः राजनीतिक दलों के लिए इस प्रक्रिया में कोई भूमिका निभाने का अवसर नहीं होगा। वस्तुतः वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत भी, देश के दो बड़े दल इस बात पर सहमत हो गये हैं कि ग्राम-पंचायतों के चुनाव में दलीय उम्मीदवार खड़े नहीं किये जायें। मेरा सुझाव है कि इस सिद्धांत का विस्तार उच्चतर संस्थाओं तक—प्रथमतः जिला परिषदों तक—किया जाये। अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली के अंतर्गत, जो प्राथमिक निर्वाचक इकाइयां—ग्राम पंचायतें—निर्दलीय होती हैं, तो पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों के चुनाव में दलों को लाने का कोई अर्थ नहीं है। इसके अलवा, जिस सामुदायिक भावना का हम निर्माण करना चाहते हैं और जो समन्वय की भावना समाज के जीवन में दाखिल करना चाहते हैं, दलबंदी उसके विरुद्ध काम करेगी।

यदि सामुदायिक राज्य-व्यवस्था को लक्ष्य के रूप में स्वीकृत कर लिया जाता है तो कुछ कदम उठाने होंगे, जिससे कि आम चुनाव उस लक्ष्य की दिशा में हमारी प्रगति को निष्फल, विकृत या दुःसाध्य नहीं कर दें। अब इसमें संदेह नहीं है कि यदि राजनीतिक दल पहले की रीति से चुनाव लड़ेंगे, तो प्रत्येक गांव राजनीतिक रूप से विघटित और विभाजित हो जायेगा, और इससे समुदाय के विकास को अपार हानि होगी। निर्दलीय आधार पर निर्वाचित पंचायत समितियां और जिला परिषदें भी दलीय गुटों में विभाजित हो जायेंगी, और तब फिर समन्वित सामुदायिक संस्थाओं के रूप में वे जो काम कर रही हैं और निष्पक्ष दृष्टि से समुदाय की सेवा करने का जो प्रयत्न कर रही हैं, उसको अपूरणीय क्षति होगी। ऐसे समय में ही यह दलीय व्यवस्था कायम है और ऐसे दल भी हैं जिनका मुख्य कार्य चुनाव लड़ना है। अतः यह स्पष्ट है कि कोई समझौता करना होगा। पहले कदम के तौर पर विभिन्न दलों के बीच यह सहमति आवश्यक है कि जहां भी ग्राम-पंचायतें, पंचायत समितियां और जिला परिषदें संघटित होती हैं, वहां उन्हें विवेकपूर्वक चुनाव-संघर्ष के बाहर रखा जाये।

समुचित निर्वाचक-मंडलों के अभाव में, व्यक्तिगत मतदाताओं को ही चुनाव में

भाग लेना होगा। परंतु, एक समझौते के तौर पर मेरा यह सुझाव है कि दलों के द्वारा उम्मीदवार खड़े करने के बदले, प्रयास किया जाना चाहिए कि मतदाता स्वयं उम्मीदवार खड़े करने में समर्थ हों। एक साल पूर्व मैंने इसी ढंग का सुझाव 3 सितंबर 1958 को संसद के सदस्यों के समक्ष अपने एक भाषण के क्रम में उपस्थित किया था। मैंने जो कुछ कहा था, वह इस प्रकार है :

'मान लीजिए, एक निर्वाचित-क्षेत्र में 300 मतदान केन्द्र हैं और प्रत्येक मतदान केन्द्र के लिए 2000 मतदाता हैं। चुनाव के पूर्व उम्मीदवार खड़े करने के उद्देश्य से प्रत्येक मतदान-क्षेत्र में मतदाताओं की सभाएं की जायें। यह आवश्यक नहीं है कि ये सभाएं उसी स्थान पर हो जहां मतदान केन्द्र बनने वाला है; वे मतदान-क्षेत्र में किसी भी सुविधाजनक स्थान में हो सकती हैं। वहां मतदाता इकट्ठे होकर अपने दो प्रतिनिधियों को चुन लें, जैसा कि यूगोस्लाविया में लोग करते हैं। इस संख्या का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। मैं एक सुझाव मात्र दे रहा हूं। इन दो प्रतिनिधियों का चुनाव सामान्य लोकतांत्रिक प्रक्रिया से, बहुमत की पद्धति से, कर लिया जाये। इसके बाद, ये सभी प्रतिनिधि, जिनकी संख्या मान लीजिए 600 होगी, एक सम्मेलन में इकट्ठे हों और इस सम्मेलन में उम्मीदवारों का मनोनयन हो। ऐसा एक नियम हो कि कोई भी व्यक्ति किसी नाम का प्रस्ताव और अनुमोदन कर सकता है। उक्त नियम यह भी निर्धारित करे कि जिस किसी व्यक्ति का नाम प्रस्तावित और अनुमोदित हो चुका है, उसे अगर एक निश्चित संख्या में जैसे 25 प्रतिशत, 30 प्रतिशत या इससे अधिक जो भी संख्या निश्चित हो—मत प्राप्त हुए हैं, तो वह मतदाताओं के प्रतिनिधियों द्वारा उम्मीदवार मनोनीत हो जाता है। इसके बाद वे प्रतिनिधि चुनाव अभियान शुरू कर सकते हैं। प्रतिनिधियों के द्वारा उम्मीदवार के चयन के पूर्व कोई दल क्षेत्र में जाकर यह नहीं कहे कि अमुक व्यक्ति को ही मनोनीत किया जाये। किसी नाम की चर्चा न की जाये। सभी दल जाकर जनता को शिक्षित कर सकते हैं और यह बता सकते हैं कि कैसे व्यक्तियों को मनोनीत किया जाना चाहिए और किस प्रकार नीतियों, कार्यक्रमों—कृषि, औद्योगिक, वैदेशिक या जो भी वे हों—का अनुसरण किया जाना चाहिए। अब प्रत्येक दल जाकर जनता को शिक्षित करने का प्रयास करे। ये दल यदि केवल लोक-शिक्षण का ही कार्य करे तो समाज के लिए उनके पास एक बहुत ही व्यापक कार्यक्रम होगा। यह सारा शिक्षण वे मनोनयन होने के पूर्व करें। मनोनयन के बाद हमें एक समझौता करना होगा, क्योंकि यह दलीय व्यवस्था है...अब मान लीजिए, प्रतिनिधि सम्मेलन ने तीन या चार उम्मीदवार मनोनीत किये। कोई भी दल उन उम्मीदवारों में से किसी को चुनकर उसे समर्थन प्रदान कर सकता है, जिस प्रकार व्यक्तिगत उम्मीदवारों के मामले में वह करता है। ये उम्मीदवार जनता के उम्मीदवार होंगे। क्योंकि वे निर्वाचन-क्षेत्र की जनता के द्वारा खड़े किये गये हैं, न कि किसी दलीय गुट ने, चाहे वह स्थानिक, प्रादेशिक अथवा अखिल भारतीय गुट हो, उन्हें खड़ा किया है। वे जनता के नामित होंगे। इसके बाद उनके नाम जनता के पास पुनः उनके वोट के लिए जायेंगे। मैं समझता हूं कि यदि इस पद्धति का अनुसरण किया जाये, तो दलीय प्रथा की बहुत सारी बुराइयां दूर हो जायेंगी। संभव है, इससे लोकतंत्र के नये रूपों का अनुभव प्राप्त करने के लिए एक नया मार्ग हमें मिल जाये।'

चुनाव के बाद, संबंधित विधायिका के सदस्य बहुमत से एक नेता का चुनाव करेंगे, जो प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री होगा। वह फिर अपने मंत्रिमंडल का निर्माण करेगा। यह सुझाव केवल संक्रमण-काल के लिए है। नई राज्य व्यवस्था का चित्र दृष्टिगत रखते हुए, किसी अन्य पद्धति का भी अनुसरण किया जा सकता है। भारत की राज्य-व्यवस्था का, और सामान्यतः सामाजिक संगठन का, जो चित्र यहां अंकित किया गया है, वह संभवतः आदर्शवादी प्रतीत होगा। ऐसा होने पर भी, मैं इसे उसका कोई दोष नहीं मानूंगा। कोई आदर्श, आदर्शवादी ही हो सकता है। प्रश्न यह है कि क्या वह आदर्श अव्यावहारिक, अवैज्ञानिक या अन्य रूप से दुष्कल्पित है? विगत पृष्ठों में मैंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सभी प्रासंगिक विचार इस आदर्श की दिशा में अप्रतिरोध्य रूप से अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। अपितु, इस आदर्श को क्रियान्वित करना अति विशाल कार्य है। इस पर अमल के लिए अनेक वर्षों तक हजारों, शायद लाखों, स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। सरकार को चाहिए कि वह इस कार्य में पूर्ण समर्थन प्रदान करे। परंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस कार्य का मुख्य भार स्वयंसेवी राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा संस्थाओं को उठाना होगा। समस्या का केन्द्रीय पक्ष यह है कि हमें समुदाय की भावना का निर्माण करना है, जिसके बिना राज्य-निकाय निष्प्राण होगा, आत्माहीन होगा। यह एक नैतिक पुनर्जीवन का कार्य है जो उदाहरण, सेवा, त्याग और प्रेम से सम्पन्न होगा। जो लोग समाज में—राजनीतिक में, व्यापार में, व्यवसाय में, उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं, उन पर अपने वैयक्तिक उदाहरण से जनता को प्रेरित करने का गुरुतर दायित्व है।

यह सामाजिक अभियंत्रणा का भी कार्य है—जिसमें राज्य की; वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों, शिक्षाशास्त्रियों, व्यापारियों, प्रयोगकर्ताओं की; पुरुषों एवं स्त्रियों की; युवकों एवं प्रौढ़ों की सहायता अपेक्षित है। यह कार्य है समर्पण का; सृजन का; स्वानुसंधान का। यह एक ऐसा कार्य है जो भारत के भाग्य को परिभाषित करता है। यह भारत के बेटे और बेटियों के समक्ष एक चुनौती का उद्घोष करता है। क्या यह चुनौती वे स्वीकार करेंगे? ❑

दुर्योधन का दरबार

❑ आचार्य राममूर्ति

महाभारत के समय दुर्योधन का दरबार राजधानी में ही था। सीमित था एक जगह। लेकिन आज यह दरबार भारत में गांव-गांव पहुंच गया है। महा-विशेषण भारत से हट कर मानो दरबार के साथ लग गया है– महादरबार। क्या होता था उस दरबार में? वहां बड़े लोग जुआ खेलते थे और वहां होता था द्रोपदी का चीरहरण। श्रेष्ठीजन वहां बैठकर यह सब तमाशा देखते थे। आज के नये-नये लोकतंत्रों में, शासन में भी दुस्शासन उपस्थित है हर जगह और इसलिए गांव-गांव में दुर्योधन का दरबार सजा बैठा है। उसे सुशासन में बदलना हो तो क्या करना पड़ेगा–इसे बता रहे हैं आचार्य राममूर्ति। –सं.

मैं गांव में क्या देखता हूं कि देश की समस्या भी गांव में है और उन समस्याओं के समाधान की कुंजी भी गांव में है। कोई विशेष परिस्थिति नहीं है हमारे देश की। एशिया के सभी देशों की यह परिस्थिति है। जो नये देश हैं, आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं उनकी भी यही हालत है। अफ्रीका के देशों की भी यही परिस्थिति है। इतने वर्षों से गांवों को देखने के बाद मैंने वहां चार बातें पायी हैं : एक बात, बहुत बड़ी और बुनियादी बात यह कि हमारा समाज परिवारों से बना हुआ है। दस-ग्यारह करोड़ परिवार गांव में रहते हैं। हम यह देखते हैं कि गांव का एक-एक परिवार एक मामले में बिलकुल एक-सा है। अलग-अलग क्षेत्रों की परिस्थिति भले ही थोड़ी अलग-अलग दिखें। क्या है वह एक बात? वह है जीवन संग्राम।

कहीं 100 से 80 परिवार और कहीं 100 से 95 परिवार जीवन के संग्राम में हार गये हैं। अगर हम यह मान लें कि जिन्दगी एक लड़ाई है, जीवन एक संघर्ष है—पेट का, जीविका या और अनेक तरह की कठिनाईयां हैं जीवन में, उनसे मुकाबला करना है। सब मिलाकर अगर जीवन एक संग्राम माना जाए तो अधिकांश परिवार जिन्दगी की इस लड़ाई में हार गए हैं। यह अर्थशास्त्र का भी एक चमत्कार हो सकता है, समाजशास्त्र का भी हो सकता है, और सारे शास्त्रों को मिलाकर भी हो सकता है।

पहली बात यह है कि आज अधिकांश परिवार जिन्दगी की लड़ाई हार गये हैं, हार रहे हैं। प्रश्न होगा कि क्यों हार रहे हैं? सरकार ने इतनी सारी नहरें बना दीं, सड़कें बना दीं, अस्पताल खोल दिये, बैंक खोल दिये, गांव-गांव में अपना प्रशासन पहुंचा दिया, स्कूल खुल गये, इतने सारे सामान जिन्दगी से लड़ने के लिए तैयार हो गये हैं, फिर ये परिवार जिन्दगी की लड़ाई भला क्यों हार रहे हैं? इस क्यों का जवाब अलग-अलग शास्त्र जानने वाले अपनी अलग-अलग भाषा में देंगे। लेकिन हम सामान्य आदमी तो यह जवाब देंगे कि साहब! हमारे पास पूंजी नहीं है किसी धंधे को शुरू करने के लिए, हमारे पास बुद्धि नहीं है किसी धंधे को चलाने के लिए और हमारे पास मेहनत की शक्ति भी नहीं बची है। श्रम भी नहीं है, बुद्धि भी नहीं है, कुछ नहीं है। आपने जो कुछ विकास का ढांचा बनाया है, उसका लाभ लेने की क्षमता हमारे अंदर नहीं है। आप हमें निकम्मा कह सकते हैं, लेकिन जो स्थिति है, वह तो यही है।

गांव की पूंजी गांव से भाग रही है। जिसके पास गांव में पैसा हो जाता है, वह उसे शहर के किसी न किसी कारोबार में लगाने शहर चला जाता है। अब चोर और डाकुओं के डर से गांव के बड़े लोग अपनी पूंजी को बैंकों में जमा कर देते हैं। और बैंकों से कहां-कहां घूमती हुई पूंजी शहरों में आ जाती है। दूसरी चीज गांव में किसी भी लड़के ने मेट्रिक्यूलेशन पास या उससे ज्यादा की पढ़ाई कर ली, वह कहीं-न-कहीं शहर में किसी न किसी काम में लगने की कोशिश करता है। और तीसरी चीज है गांव की श्रमशक्ति। आज कोई भी जवान मजदूर अगर उसका बस चले तो गांव में नहीं रहना चाहता। वह शहर में आकर रिक्शा चलाने को राजी है, लेकिन गांव में नहीं रहना चाहता। पूछिए, उससे क्यों? क्योंकि गांवों में ईमान की रोटी भी नहीं है और इज्जत की जिन्दगी भी नहीं है। फिर किस लालच से वह वहां रहे? किस भरोसे वह वहां रहे?

अगर गांव की पूंजी गांव से निकल गयी तो दूसरी भाषा में गांव की लक्ष्मी गांव से निकल गयी। अगर गांव का पढ़ा-लिखा युवक गांव से निकल गया तो गांव की सरस्वती गांव से निकल गयी। और जवान मेहनत करने वाला मजदूर निकल गया तो गांव की शक्ति गांव से निकल गयी। पूंजी यानी लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति से वंचित गांव जिन्दगी की लड़ाई कैसे जीतेगा? कैसे लड़ेगा? किन हथियारों से लड़ेगा? आज विकास के जितने भी अवसर उसके सामने आते जायेंगे, कोई न कोई चोर ऐसा है, जो उन अवसरों को सामने रखकर भी किसी दूसरे रास्ते से उन अवसरों को छीन लेता है।

एक और बात, जो गांव में हम देखते हैं, वह यह है कि एक-एक गांव आज दुर्योधन का दरबार बना हुआ है। क्या होता था उस दरबार में? द्रौपदी का चीरहरण और बड़े-बड़े श्रेष्ठीजन बैठकर तमाशा देखते थे। यह ख्याति है दुर्योधन के दरबार की। आज गांव में पुलिस तो है, लेकिन सुरक्षा नहीं है। विद्यालय है, लेकिन विद्या नहीं है। बड़ी-से-बड़ी अनीति हो जाए, बड़े से बड़ा अन्याय हो जाये, उसको सुनने वाला कोई नहीं है।

अब आप कल्पना कर सकते हैं कि जहां अधिकांश लोगों की इतनी असहाय अवस्था हो, वहां उनका मानस कैसा होगा? उसमें कहां से आयेगी आशा और आस्था? कहां से पैदा होगा विश्वास समाज में, भगवान में, अपने भविष्य में और किस प्रेरणा से

प्रेरित होकर मनुष्य पुरुषार्थ के लिए आगे बढ़ेगा? एक चीज, हम सुनते हैं, पढ़ते हैं कि पुराने ढंग के साम्राज्य समाप्त हो गये। लेकिन अब जो बड़े-बड़े देश हैं, उनमें द्वेष है, वे एक नये ढंग का नया साम्राज्यवाद दुनिया में कायम कर रहे हैं, एक नया उपनिवेशवाद।

अपने देश में हम क्या देखते हैं, गांव कच्चा माल पैदा करता है और तैयार माल खरीदता है। कच्चा माल शहर को देता है और शहर से तैयार माल खरीदता है। औपनिवेशिक किसको कहते हैं? हम लोगों को जो परिभाषा पढ़ाई गयी वह तो यही थी कि जब हमारे देश का इंग्लैंड से संबंध था—शासक और शासित का, तब यह कहा जाता था कि हम कच्चा माल बेचने पर विवश हैं, और उनका तैयार माल खरीदने पर विवश हैं। हमारे माल वे अपने भाव से खरीदेंगे और अपना माल वे हमें अपने भाव से बेचेंगे। मजाक चलता है कि अगर घर आयेंगे तो आप क्या खिलायेंगे और हमारे घर आइएगा तो क्या-क्या लाइएगा—यानी दोनों हाथ हमारे भरने चाहिए। यह संबंध औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का हमको बताया गया था। गांव और शहर में यही प्रबंध आज भी कायम है। एक अजीब बात है, हम जब पढ़ते थे तब भी यह देश गरीब ही था। अमीर देशों में इसकी गणना तब नहीं थी और आज तो इसने गरीबी में कुछ तरक्की की ही है। हमने कोई अध्याय कभी भी अर्थशास्त्र के ग्रंथ में गरीबी पर नहीं पढ़ा, शोषण पर कोई अध्याय नहीं पढ़ा। वाराणसी के हमारे एक मित्र अर्थशास्त्र विभाग के एक बड़े प्राध्यापक हैं। मुलाकात हुई बहुत वर्षों के बाद। पूछा कि क्यों भाई! हम-तुम पढ़ते थे उस वक्त और उसके बाद जो ग्रंथ लिखे गये हैं, उनमें कोई अध्याय जोड़े गये हैं? बोले कि अभी तक तो नहीं। आंकड़े नये हैं, विचार पुराने हैं, इसीलिए आंकड़ों से ज्यादा भरोसा आंखों पर करना चाहिए। क्योंकि आंखें तो बिलकुल नई हैं। वे तो रोज नई चीजें देखने के लिए तैयार हैं। आज तक हमारे ग्रंथों में गरीबी और शोषण पर कोई उल्लेख नहीं है। लेकिन जब हम गांव में जाते हैं तो सबसे पहले ये ही कांटे गांव में चुभते हैं। सारे जीवन का ताना-बाना गरीबी और शोषण, दमन और उत्पीड़न इसी का दिखायी देता है। मैं कोई काव्य रचना नहीं कर रह हूं। कविता मैंने कभी की भी नहीं है और कविता मुझे समझ में आती भी नहीं है।

जो गांव में देखा और आज तक देखता चला आ रहा हूं, उसका उल्लेख आपके सामने यह मानकर कर रहा हूं कि शायद यह जो रहस्य है, उसका उद्घाटन हो जाये। ये चार बातें गांव में देखता हूं और गांव के क्या माने हैं? जहां 71 से 80 प्रतिशत लोग रहते हैं। इस भूमिका में, इस संदर्भ में प्रयत्न तो हुए जीवन की भूमिका बदलने के। अरबों अरब रुपये खर्च करके सामुदायिक विकास योजना कार्यक्रम चला। और आज भी इन ब्लाकों के दफ्तर किसी वक्त जोर-जोर से चलने वाले कार्यक्रमों के अवशेष के रूप विद्यमान हैं। पुराने इतिहास के बहुत सारे अवशेष अपने देश में हैं। ये ब्लाक आफिस, प्रखंड कार्यालय भी वास्तविकता है किसी आंदोलन की। क्या हुआ उस कम्युनिटी डेवलपमेंट का? और कहां है वह तुम्हारा डेपलपमेंट जिसे तुम्हारी कम्युनिटी खुद नहीं पहचान पायी? दो में से एक का भी तो पता चलता। और तब बरसों के बाद एक रोज हैदराबाद में कान्फ्रेंस हुई कम्युनिटी डेवलपमेंट की तो तत्कालीन योजना मंत्री श्री डे साहब ने यह कह दिया कि अरे वह कम्युनिटी तो थी ही नहीं, जिसका हम डेवलपमेंट कर रहे थे।

कितनी देर में खोज होती है, कितना समय लगता है हमारे नेताओं को, प्रशासकों को, विशेषज्ञों को, किसी चीज को ढूंढने में। और इसलिए लगता है कि परिस्थिति से हटकर सत्य की तलाश पुस्तकों में होती है। जिस गांव का हम विकास करना चाहते थे, वह कम्युनिटी थी ही नहीं। वहां समुदाय ही नहीं था। वहां तो गरीबी की एक दुनिया अलग, अमीर की दुनिया अलग, सवर्ण की दुनिया अलग, अवर्ण की दुनिया अलग, हिन्दू की दुनिया अलग, मुसलमान की दुनिया अलग, नेता की दुनिया अलग, वोटर की दुनिया अलग। वहां तो अलग-अलग दुनिया है, समुदाय कहां हैं? अगर गांव एक समुदाय होता तो उसकी सामूहिक चेष्टा, उसका एक सामूहिक हित होता और उसके सामूहिक पुरुषार्थ की एक दिशा होती। हुआ विकास, लेकिन कितने लोगों का, कितना हुआ? आज भी हम गांव में देख सकते हैं—पंचायती राज हुआ है या नहीं, न हुआ हो, लेकिन पांच लोगों का राज्य तो हुआ। नेता का राज्य हुआ, असफर का राज्य हुआ, गांव के मुखिया का राज्य हुआ, महाजन का राज्य हुआ और उन सबसे ऊपर गुंडे का राज्य हो रहा है।

यह कौन कह सकता है कि हमारे देश में विकास के काम नहीं हुए। विकास के काम बहुत हुए। देखने लायक चीजें बनीं, नये-नये तीर्थस्थल कायम हुए, भाखड़ नंगल वगैरा। लेकिन विकास नहीं हुआ। नये-नये प्रकल्प बने, लेकिन विकास नहीं हुआ। विकास के कार्यों में और विकास में अंतर है। विकास के कार्य अंग्रेजी जमाने में भी हुए थे। मुझे अच्छी तरह से याद है—1930 का वह जमाना। अंग्रेजों ने रेलें चलायीं, सड़कें, नहरें निकालीं, बड़े-बड़े विश्वविद्यालय कायम किये, न्यायालय कायम किये। 26 जनवरी 1930 को जब कांग्रेस अधिवेशन में स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र पढ़ा गया और उसमें कहा गया कि अंग्रेजी राज्य से हमारा ह्रास हुआ है—आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक गिरावट आयी है। यह कहा गया, क्योंकि वह गांधीजी का बनाया ड्राफ्ट था। तो हमारे देश के उस वक्त के अंग्रेज मालिकों के एक दैनिक पत्र ने एक संपादकीय लिखा और यह बताया कि यह घोषणा-पत्र स्वतंत्रता का नहीं है, अकृतज्ञता का घोषणा-पत्र है। जिस अंग्रेजी राज्य ने इतना कुछ किया, उसके प्रति घोर अकृतज्ञता! कोई कह सकता है कि तुम भला इतनी अकृतज्ञता क्यों प्रकट कर रहे हो—इतने विकास के बाद। प्रति व्यक्ति

आमदनी के आंकड़े क्यों नहीं देखते? कुल राष्ट्रीय उत्पादन के आंकड़े क्यों देखते। मैं आंकड़े क्यों देखूं? विटन ह्यूमर (अमेरिका) में एक कारखाना था। शाम को घंटी होने पर दो मजदूर कारखाने से निकलने लगे। शाम का अखबार बिक रहा था। अखबार खरीद लिया। उस रोज मोटे अक्षरों में मुखपृष्ठ पर यह खबर थी—'अमेरिका की तिजोरी में अरबों-खरबों का सोना'। वह बड़ा खुश हुआ यह देखकर। गर्व तो होता ही है, अपने देश की समृद्धि पर। वह जो दूसरा दोस्त था, उसने पहले दोस्त की जेब में हाथ डाला। अखबार पढ़ने वाले दोस्त ने पूछा यह क्या कर रहे हो? वह बोला कि मैं देख रहा हूं कि तुम्हारी जेब में उसमें से कितना है? यानी सामान्य की जेब में उसमें से कितना है।

पुराने जमाने में एक ही रहस्य था—भगवान। उसकी तलाश ऋषि-मुनि करते थे। और बहुत कुछ तलाश कर ली थी लोगों ने। इतने बड़े-बड़े ग्रंथ रच दिए। लेकिन आज दो रहस्य और हैं। कितना बड़ा रहस्य है यह बाजार। आज एक रुपया लेकर जाइए तो एक किलो चावल मिलेगा। कल जाइए तो एक सौ ग्राम कम मिलेगा। पूछिए, उस व्यापारी से, क्या हुआ? तो वह कहेगा कि हमें खुद ही नहीं मालूम कि क्या हुआ? लेकिन भाव यही है। कल शाम तक चीनी बाजार में थी, आज जाइए तो नहीं है। भाई! कहां गई रातोंरात? मालूम नहीं। यह एक रहस्य है। कुछ पता नहीं चलता। मुद्रास्फीति की चर्चा संसद में होती है सरकार कहती है, कोशिश तो बहुत है, लेकिन मामले की पकड़ नहीं हो रही है। वह हाथ से निकलता जा रहा है। मुद्रास्फीति की रहस्यपूर्ण शक्तियां ऐसी हैं जो आज हमारे देश में सरकार को भी चला रही हैं। हमारे देश में आदमी घूमने लगे तो उसको पता नहीं चलता कि कौन-सी फाइल कितने दिन में कहां पहुंचती है, उस पर कौन-कौन से नोट्स लगते हैं। कहां फैसला होता है, कुछ पता नहीं चलता और उसी तरह बाजार का हाल है सामान्य आदमी के लिए। तो ये दोनों रहस्य हैं—सरकार भी और बाजार भी। वह उसमें तलाश करके थक जाता है कि हम कहां हैं और अपने को नहीं पाता। क्यों, हर एक यह मानता है कि हम जहां पहुंचना चाहते थे, वहां पहुंच नहीं सके। क्यों हमारे तत्कालीन योजनामंत्री को यह कहना पड़ा कि योजना विफल हुई? क्यों कहना पड़ा? क्या जो योजना विफल हुई वह विशेषज्ञों की बनायी हुई नहीं थी। क्या इस देश के निरक्षरों ने वह योजना बनायी थी। नहीं, विद्वानों ने बनायी थी और शायद देश-विदेश के विद्वानों ने मिलकर बनायी थी। बनाने में बहुत वर्ष लगे थे, बहुत धन लगा था, समय लगा था। पर फिर क्या हुआ? अगर कोई एक कारण हो तो क्या वह यह कारण हो सकता है कि जो तरीके अपनाये गये, हमारी विकास योजनाओं में, वे तरीके इस देश के नहीं थे।

स्वदेशी शब्द पुराना हो गया हो तो छोड़ा जा सकता है। बूढ़े बाप को भी छोड़ा जा सकता है तो पुराने शब्दों को क्यों न छोड़ा जाए। तो स्वदेशी शब्द छोड़ा जा सकता है। लेकिन मुश्किल यह है कि समस्याएं हमेशा स्वदेशी होंगी। समाधान अगर विदेशी होंगे तो वे समस्याएं हल नहीं होंगी। स्वदेशी समस्याएं विदेशी उपायों से कैसे हल होंगी? बिलकुल सामान्यजन का तर्क है। हिन्दू को स्वर्ग कुरान पढ़ने में कैसे मिलेगा? मुसलमान को स्वर्ग गीता पढ़ने से कैसे मिलेगा? वह एक ईसाई बुढ़िया थी न? उसने गांधीजी पर बहुत अफसोस जाहिर किया था कि तू है तो क्राइस्ट की तरह ही, लेकिन अफसोस यह है कि तू स्वर्ग नहीं जाएगा, क्योंकि तू ईसाई नहीं है। उसका दिल रोता था—गांधी के लिए कि वह मरेगा तो स्वर्ग नहीं जायेगा। इस बेचारे देशी महात्मा को दूसरे धर्म के आश्रय से वह स्वर्ग पहुंचाना चाहती थी।

और वही हाल हुआ हमारा। हमने लोकतंत्र चलाया। संसदीय लोकतंत्र में लोक कल्याण की विकास नीति चलायी—राज्य के माध्यम से। लोक कहां है? कहां है तंत्र और कहां है 'कल्याण'? तरीके हमने निकाले कि अमेरिका में ऐसा कम्युनिटी डेवलपमेंट होता है। जरूर होना चाहिए हमारे देश में। क्या हम तुमसे कम हैं? कम तो नहीं हैं भाई, लेकिन ये तरीके हमारे नहीं थे। हमारे देश की प्रतिभा से इनका मेल नहीं था। ये अच्छे थे, लेकिन विदेशी, एक अंग्रेज मेरे पिता से ज्यादा योग्य हो सकता है लेकिन मेरा पिता नहीं बन सकता। मैं क्या करूं यह मेरी बदनसीबी है। बहुत सारी चीजें विदेशी हैं, बहुत अच्छी हैं लेकिन हमारे काम की नहीं हैं। आज तो बड़े-बड़े विद्वान विदेशों के, अपने देश को तो नहीं, हमको यह चेतावनी दे रहे हैं कि अपनी अलग राज्य पद्धति निकालो, अपनी अलग विकास-पद्धति निकालो, अपनी अलग तकनीक निकालो। हमारी नकल करोगे तो मर जाओगे। कहां हमारी प्रति व्यक्ति आमदनी 771 के आसपास है और इसमें टाटा-बिड़ला की आमदनी भी शामिल है। और जब से यह पता चला कि हमारे देश में 50% लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं तो हर राज्य का मुख्यमंत्री यह कहता है कि हमारे राज्य में 50% से ज्यादा गरीबी रेखा के नीचे हैं। अपने राज्य की दरिद्रता बढ़ाकर बताने का शौक इसलिए है कि केन्द्र से अधिक अनुदान, आर्थिक सहायता मिल सके।

योजना आयोग ने कहा है कि देश के 10 प्रतिशत लोग जो कंगाल हैं, उनके लिए योजनाएं नहीं बन सकतीं। इस प्रकार साढ़े सात करोड़ लोग तो योजना से बाहर ही हो गये। इन्हें योजना का कोई भी लाभ नहीं मिल सकेगा।

इसलिए स्वदेशी समस्याओं के हल भी स्वदेशी ही होंगे। स्वदेशी बुद्धि से होंगे। गांव से लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति का पलायन रोकने की योजनाएं बनेंगी तो गांव बनेगा। देश बनेगा। और तब कुछ उस रहस्य से भी परदा हटेगा जिसे हमने ऊपर बताया था। बाजार और सरकार, कुछ पास आ सकेंगे, कुछ समझ में आ सकेंगे।

और तब दुर्योधन का दरबार भी उजड़ेगा। ❑

5 जून : विश्व पर्यावरण दिवस

अनियोजित शहरीकरण : मलिन बस्तियों में तब्दील होते बड़े शहर

❑ पंकज चतुर्वेदी

भारत की कुल आबादी का 8.50 प्रतिशत हिस्सा देश के 26 महानगरों में रह रहा है। अनुमान है कि आने वाले 20-25 सालों में 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 60 से अधिक हो जायेगी, जिनका देश के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 70 प्रतिशत होगा। एक बात बेहद चौंकाने वाली है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या शहरों में रहने वाले गरीबों के बराबर ही है। यानी कहीं हमारा देश आने वाली सदी में 'अरबन स्लम' या शहरी मलिन बस्तियों में तब्दील न हो जाये। –सं.

संयुक्त राष्ट्र संघ का मानना है कि वर्ष 2050 तक भारत की 60 फीसद आबादी शहरों में रहने लगेगी। वैसे भी 2011 की जनगणना के मुताबिक कुल 31 फीसद आबादी अभी शहर में निवास कर रही है। साल दर साल बढ़ती गरमी, गांव-गांव तक फैल रहा जल-संकट का साया, बीमारियों के कारण पट रहे अस्पताल, ऐसे कई मसले हैं जो आम लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक बना रहे हैं। कहीं कोई नदी, तालाब के संरक्षण की बात कर रहा है तो कहीं कोई पेड़ लगाकर धरती को बचाने का संकल्प ले रहा है तो कहीं जंगल व वहां के बाशिंदे जानवरों को बचाने के लिए प्रयास कर रहे हैं, लेकिन भारत जैसे विकासशील देश में पर्यावरण का सबसे बड़ा संकट 'शहरीकरण' एक समग्र विषय के तौर पर लगभग उपेक्षित है।

असल में संकट जंगल का हो या फिर स्वच्छ वायु का या फिर पानी का। सभी के मूल में विकास की वह अवधारणा है जिससे शहर रूपी सुरसा सतत विस्तार कर रही है और उसकी चपेट में आ रही है प्रकृति और नैसर्गिकता। अपने देश में संस्कृति, मानवता और बसाहट का विकास नदियों के किनारे ही हुआ है। सदियों से नदियों की अविरल धारा और उसके तट पर मानव-जीवन फलता-फूलता रहा है। बीते कुछ दशकों में विकास की ऐसी धारा बही कि नदी की धारा आबादी के बीच आ गयी और आबादी की धारा को जहां जगह मिली, वह बस गयी। यही कारण है कि हर साल कस्बे नगर बन रहे हैं और नगर-महानगर। बेहतर रोजगार, आधुनिक जन सुविधाएं और उज्ज्वल भविष्य की लालसा में अपने पुश्तैनी घर-बार छोड़कर शहर की ओर पलायन करने की प्रवृत्ति का नतीजा है कि देश में एक लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 302 हो गयी है, जबकि 1971 में ऐसे शहर मात्र 151 थे। यही हाल दस लाख से अधिक आबादी वाले शहरों का है। इसकी संख्या गत दो दशकों में दुगुनी होकर 16 हो गयी है। पांच से 10 लाख आबादी वाले शहर 1971 में मात्र नौ थे जो आज बढ़कर आधा सैकड़ा हो गये हैं।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि आज देश की कुल आबादी का 8.50 प्रतिशत हिस्सा देश के 26 महानगरों में रह रहा है। विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट बताती है कि आने वाले 20-25 सालों में 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 60 से अधिक हो जायेगी जिनका देश के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 70 प्रतिशत होगा। एक बात और बेहद चौंकाने वाली है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या शहरों में रहने वाले गरीबों के बराबर ही है। यह संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है, यानी यह डर गलत नहीं होगा कि कहीं भारत आने वाली सदी में 'अरबन स्लम' या शहरी मलिन बस्तियों में तब्दील न हो जाए। शहर के लिए सड़क चाहिए, बिजली चाहिए, मकान चाहिए, दफ्तर चाहिए। इन सबके लिए या तो खेत होम हो रहे हैं या फिर जंगल। जंगल को हजम करने की चाल में पेड़, जंगली जानवर, पारंपरिक जलस्रोत, सभी कुछ नष्ट हो रहा है। यह वह नुकसान है, जिसका हर्जाना संभव नहीं है। शहरीकरण यानी रफ्तार, रफ्तार का मतलब है वाहन और वाहन है कि विदेशी मुद्रा का भंडार से खरीदे गये ईंधन को पी रहे हैं और बदले में दे रहे हैं दूषित वायु। शहर को ज्यादा बिजली चाहिए, यानी ज्यादा कोयला जलेगा, ज्यादा परमाणु संयंत्र लगेंगे।

दिल्ली, कोलकाता, पटना जैसे महानगरों में जल निकासी की माकूल व्यवस्था न होना शहर में जल-भराव का स्थाई कारण कहा जाता है। मुंबई में मीठी नदी के उथले होने और 50 साल पुरानी सीवर व्यवस्था के जर्जर होने के कारण बाढ़ के हालात बनना सरकारें स्वीकार करती रही हैं। बेंगलुरु में पारंपरिक तालाबों के मूल स्वरूप में अवांछित छेड़छाड़ को बाढ़ का कारक माना जाता है। शहरों में बाढ़ रोकने के लिए सबसे पहला काम तो वहां के पारंपरिक जल स्रोतों में पानी की आवक और निकासी के पुराने रास्तों में बन गये स्थाई निर्माणों को हटाने का करना होगा। यदि किसी पहाड़ी से पानी नीचे बहकर आ रहा है तो उसका संकलन किसी तालाब में ही होगा। ऐसे जोहड़-तालाब कांक्रीट की नदियों में खो गये हैं। परिणामतः थोड़ी ही बारिश में पानी कहीं बहने को बहकने लगता है। महानगरों में भूमिगत सीवर जल भराव का सबसे बड़ा कारण है। जब हम भूमिगत सीवर के लायक संस्कार नहीं सीख पा रहे हैं तो फिर खुले नालों से अपना काम क्यों नहीं चला पा रहे हैं?

पोलीथीन, घर से निकलने वाले रसायन और नष्ट न होने वाले कचरे की बढ़ती मात्रा, कुछ ऐसे कारण हैं, जो कि गहरे सीवरों के दुश्मन हैं। शहर का मतलब है औद्योगीकीकरण और अनियोजित कारखानों की स्थापना, का ही दुखद परिणाम है कि तकरीबन सभी नदियां अब जहरीली हो चुकी हैं। नदी थी खेती के लिए, मछली के लिए, दैनिक कार्यों के लिए न कि उसमें गंदगी बहाने के लिए। गांवों को कस्बे, कस्बों को शहर और शहरों को महानगर में बदलने की होड़, एक ऐसी मृग मरीचिका की लिप्सा में लगी है, जिसकी असलियत कुछ देर से खुलती है। दूर से जो जगह रोजगार, सफाई, सुरक्षा, बिजली, सड़क के सुख के केन्द्र होते हैं, असल में वहां सांस लेना भी गुनाह लगता है।

शहरों की घनी आबादी संक्रामक रोगों के प्रसार का आसान जरिया होते हैं, यहां दूषित पानी या हवा भीतर ही भीतर इंसान को खाती रहती है और यहां बीमारों की संख्या ज्यादा होती है। देश के सभी बड़े शहर इन दिनों कूड़े को निबटाने की समस्या से जूझ रहे हैं। कूड़े को एकत्र करना और फिर उसका शमन करना, एक बड़ी चुनौती बनता जा रहा है। एक बार फिर शहरीकरण से उपज रहे कचरे की मार पर्यावरण पर ही पड़ रही है।

असल में, शहरीकरण के कारण पर्यावरण को हो रहा नुकसान का मूल कारण अनियोजित शहरीकरण है। बीते दो दशकों के दौरान यह परिपाटी पूरे देश में बढ़ी कि लोगों ने जिला मुख्यालय या कस्बों की सीमा से सटे खेतों पर अवैध कालोनियां काट लीं। इसके बाद जहां कहीं सड़क बनीं, उसके आसपास के खेत, जंगल, तालाब को वैध या अवैध तरीके से कांक्रीट के जंगल में बदल दिया गया। देश के अधिकांश शहर अब सड़कों के दोनों ओर बेतरतीब बढ़ते जा रहे हैं। न तो वहां सार्वजनिक परिवहन है, न ही सुरक्षा, न ही बिजली-पानी की न्यूनतम आपूर्ति। ❑

श्रद्धांजलि

साथी नेत्रा

दो दिनों से मन में नेत्रा का विचार बना रहा। आरा के साथी सुशील के मित्र जितेश जी का दो दिन पहले ही फोन था— नेत्रा अब बहुत दिन नहीं निकलेगी। पैसों की उसे जरूरत है। हमें कुछ करना होगा। आज जब मैं सुबह में टहलने निकला था, तब मन में यही सताता रहा कि साथियों को अपील करनी है, तो उसका निवेदन कैसे लिखूं? अभी दोपहर में कार्यालय आया और जसवा के राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्यों को वाट्सअप किया, नेत्रा को आर्थिक मदद देने के बारे में! और इतने में जितेश जी का फोन आया...नेत्रा नहीं रही!

नेत्रा निपाणी की! गुजराती परिवार की! निपाणी तम्बाखू के लिए मशहूर है। उसके पिताजी तम्बाखू के व्यापारी थे। सघन परिवार की, सुरक्षित परिवार की!

वह वाहिनी परिवार में कैसे आयी? इसक जवाब देना हमारे लिए मुश्किल है। बहुत पीछे मुड़कर देखता हूं तो याद आ रहा है कि लोकसमिति की मालतीताई चिचलीकर के घर वह मुझे मिली थी। मुम्बई के रेड लाईट इलाके में वह काम करती थी। मुम्बई में उसकी मौसी रहती थी। उन्हीं के घर पर उसका मुकाम रहता था। और, फिर वह नागपुर चली गयी। नागपुर में छात्र युवा संघर्ष वाहिनी का राष्ट्रीय कार्यालय था, वहीं पर वह रहती थी। वहां भी वह रेड लाईट एरिया में काम करने लगी थी। अब वह छात्र युवा संघर्ष वाहिनी की पूर्णकालिक कार्यकर्ता बन गयी थी। मीटिंगों में उपस्थित रहना, चर्चा में भाग लेना उसके लिए महत्त्वपूर्ण हो गया था। छात्र युवा संघर्ष वाहिनी में उस समय 'डिस्पोजल' शब्द प्रचलित था। जो साथी 'डिस्पोजल' पर रहता था, उसे संयोजक जहां भेजे वहां जाना पड़ता था। नेत्रा घर से निकल चुकी थी, फकीर बन चुकी थी।

मुझे याद है वह संगठन के आदेश पर बुलढाना (महाराष्ट्र) में रह रही थी। वहां जाते ही नेत्रा को पता चला कि वहां रोटरी क्लब ने महिलाओं की सौंदर्य प्रतियोगिता रखी है। नेत्रा ने तुरंत सूत्र अपने हाथों में ले लिये और वह भिड़ गयी। रोटरी क्लब वालों को यह पता नहीं चल रहा था कि प्रतियोगिता लेने में उन्होंने कौन-सी गलती की है? वाहिनी जब उनसे टकरायी तब वे होश में आये और प्रतियोगिता रहित कर दी गयी।''

नेत्रा में बहुत ऊर्जा थी। दौड़-धूप करने में वह थकती नहीं थी। तेज चलती थी, कहना पड़ता था कि थोड़ा धीरे चलो! नागपुर में लता कामत पर अन्याय हुआ, अन्याय के खिलाफ मोर्चा बना। महिलाओं ने नेतृत्व संभाला। नेत्रा जोशीली थी, जब मोर्चा उस आदमी के दुकान पर गया तो उसका कॉलर पकड़कर उसे झापड़ देने वाली नेत्रा ही थी। उस पर केस भी दर्ज हुआ, उसे कोर्ट-कचहरी के फेरे में फंसना भी पड़ा।

जब वाहिनी की बैठक होती, नेत्रा विस्तार से 'मोहपा' का रिपोर्टिंग करती। जब उसपर रिपोर्ट करने का मौका आता और वह 'मोहपा' पर बोलने लगती तो हम लोग उसका मजाक करते थे, लेकिन असल में नेत्रा की वह हिम्मत दाद देने वाली थी। मोहपा नागपुर के पास का गांव है। वहां की लड़की पर बलात्कार हुआ था। उस घटना पर वाहिनी सक्रिय थी। उसने आगा देखा न पीछा और अपने स्वभाव के अनुसार भिड़ गयी। उस लड़की को वह गांव से उठा लायी। उसे नर्सिंग कोर्स में डाला और कोर्स पूरा होने के बाद वाहिनी से जुड़े साथी से उसकी शादी भी करवा दी। आज भी वह लड़की उसे अपनी मां मानती है।

नेत्रा कैंसर से पीड़ित हुई। कैंसर से भी उसने हिम्मत के साथ सामना किया। लेकिन अब वह नेत्रा नहीं रही, जिसे कहना पड़ता था थोड़ा चुप बैठो। इतना तेज मत चलो।

जब वह आखिरी बार रूटीन चेक-अप के लिए मुंबई आयी थी तब उसके स्वभाव में फर्क पड़ते हुए दिखायी देता रहा। अगल-बगल की बातों का उसे भान नहीं रहता। वह चुपचाप रहती। मुंबई से लौटने के बाद उसका विस्मरण बढ़ता गया। आखिर में उसने अपने सभी इंद्रिय कछुए के समान अंदर खींच लिये। विस्मृति और मौन लिए वह हमसे दूर निकल गयी। नेत्रा की कहानी अब खत्म हो चुकी है। लेकिन वह हमारे स्मृतियों में हमेशा के लिए जिन्दा है। मेरा क्रांतिकारी अभिवादन!

–जयंत दिवाण

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा'

जुलू विद्रोह और कस्तूरबा

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।–संपा.

कस्तूरबा ने मोहनदास की घर से अक्सर होने वाली अनुपस्थिति को धीरज के साथ, एक मौन प्रतिभागी के रूप में स्वीकार किया था। लेकिन इस बदली हुई परिस्थिति में मोहनदास न तो योग्य वकील रहे थे, न ही वे अपना और अपने साथियों का बचाव

कर पाये थे। केवल सजा पाये मुजरिम रह गये थे। सरकार भारतीयों द्वारा एक अन्यायपूर्ण अध्यादेश का विरोध का नेतृत्व करने के कारण मोहनदास को दंडित करने के लिए कटिबद्ध थी। कस्तूर ने उसमें हिस्सेदारी के लिए स्वयं अपने को आंशिक रूप से दंडित कर लिया था।

फीनिक्स में जोहान्सबर्ग के समाचार जानने का एक ही तरीका था कि स्टेशन से समाचार-पत्र उठाकर ले आया जाये। कस्तूरबा रोज शाम के समय प्रतीक्षा करती थी कोई अखबार लेकर आये और समाचार का अनुवाद करके सुनाये। धीरे-धीरे समाचारों के माध्यम से वह जान गयी थी कि उसके पति वहां अकेले नहीं हैं। सब विश्वसनीय साथी उनके साथ हैं। सभी ने वही वाक्य दोहरा दिया जो मोहनदास ने अदालत में कहा था। सभी को समान सजा दी गयी थी। दूसरे सत्याग्रहियों ने भी जेल जाने के लिए नये-नये तरीके निकाल लिए थे, जैसे एक सौ पचास लोग गैर कानूनी वस्तुओं की खरीद-फरोख्त में धर लिये गये थे। अखबारों से यह पता नहीं चलता था जेल के अंदर सत्याग्रहियों का क्या हाल है। कस्तूरबा की सबसे बड़ी चिन्ता यही थी। उसने डरबन में कदम रखने के तुरंत बाद जो कुछ देखा था, उसी कारण, उसकी चिन्ता थी। अगर जेल में उन पर हमला कर दिया तो उन्हें कौन बचायेगा। इस सवाल का जवाब अंदर से आया—ईश्वर। जैसे उसने अलेक्जेन्डर की पत्नी सारा को भेज दिया था, ऐसे ही कोई माई का लाल बचाने आ जायेगा।

कस्तूरबा ने अपने विश्वास के बल पर धीरे-धीरे अपनी शंकाओं का शमन कर लिया था। उसकी यही मूल प्रवृत्ति उसकी शक्ति थी। वह अपने लिए कभी परेशान नहीं होती थी। जब भी कभी कोई मुसीबत आयी उसने उसे उसी रूप में साहस के साथ स्वीकार किया। पति जेल में थे, उसके सामने उसका अपना दायित्व स्पष्ट था। पूरा फीनिक्स आश्रम अब उसकी अपनी गृहस्थी थी। एक संयुक्त परिवार की तरह। मातृ-शक्ति के रूप में पूरा भार अपने कंधों पर ले लिया था। जिससे कोई संवासी मोहनदास की अनुपस्थिति के कारण अवसाद का अनुभव न करे। वह प्रत्येक संवासी को ट्रांसवाल के आंदोलन की वास्तविक स्थिति से अवगत कराती रहती थी। यही एक रास्ता था, मोहनदास के द्वारा बनाये गये सिद्धांत और आचार संहिता में सब संवासियों का विश्वास बना रहे। हालांकि कस्तूरबा औपचारिक रूप से शिक्षित नहीं थी लेकिन वह फीनिक्स में रह रहे विभिन्न धर्मों और वर्ण के लोगों के साथ बहुत सहज थी। दरअसल फीनिक्स सेटिलमेंट ही पहला गांधी आश्रम था। उनमें से बहुत से लोगों से वह उनकी भाषा में संवाद नहीं कर पाती थी, पर वह क्या कहना चाहती है यह बात उन तक पहुंचा देती थी। वह आश्रमवासियों का सम्मान पाने में काफी हद तक सफल हो गयीं थी। इस कारण नहीं कि वह गांधी भाई की पत्नी है बल्कि इसलिए कि उसमें आत्म-गरिमा, कर्म के पति समर्पण और एक करुणा भरा हृदय था। मोहनदास करमचंद गांधी एक-एक पैसे का हिसाब रखते थे। कस्तूरबा लिख नहीं सकती थी इसलिए वह दिन-भर के खर्च का लेखा-जोखा दिमाग में रखती थी और शाम को हिसाब रखने वाले एलबर्ट वेस्ट या मगनलाल गांधी को लिखा देती थी। इसी कारण कस्तूरबा को आश्रम की आर्थिक स्थिति का अंदाज रहता था। सवेरे से शाम तक फीनिक्स आश्रम बा के लिए सेवा का केन्द्र बन गया था।

1908 की ही घटना है। मोहनदास के जेल जाने के तुरंत बाद कई एकड़ में अन्नानास लगाया था। यह फीनिक्स आश्रम में फल उत्पादन के क्षेत्र में किया जाने वाला पहला प्रयोग था। पेड़ों पर फल पक गये थे। बड़े-बड़े रसीले और कांटों के ताज से सजे फल उतरने के लिए तत्पर थे। सभी जवान और बूढ़े, उन्हें बाजार में भेजने के लिए, साफ करके पैकेट बनाने में जुट गये। कस्तूरबा उन्हें याद दिला रही थी कि ये फल आश्रम के भविष्य के लिए कितना महत्त्व रखते हैं। उन फलों की बिक्री से होने वाली आमदनी से ही इंडियन ओपिनियन का प्रकाशन संभव होगा।

उस दिन रसोई से छुट्टी पाकर, चिलचिलाती धूप में बा अपनी गर्भवती बहू को आराम करने के लिए भेजकर स्वयं घर के पीछे अन्नानास के खेत में चली गयी। हरिलाल प्रेस में काम कर रहा था। बाकी सब लोग अन्नानास तोड़ रहे थे। कस्तूर मणिलाल को खोज रही थी। रामदास और देवदास कभी के थककर घर जा चुके थे। मणिलाल लंबा-तगड़ा था। कस्तूरबा को इस बात पर गर्व था कि वह काम करता हुआ थकता नहीं था। वह अन्नानास काटने में बिना सांस लिये लगा था। बा को आते देखकर वह रुक गया और सीधा खड़ा होकर कमीज की आस्तीन से भौंहों का पसीना पोंछने लगा। वह बोला, 'बा, बहुत प्यास लगी है।'

'अरे बावले, इतने रस से भरे अन्नानास तेरे सामने रखे हैं, फिर भी प्यासा है।' कस्तूरबा ने हंसकर कहा, 'किसने रोका?'

'ये सब तो बाजार में बिकने जायेंगे...' मणिलाल ने चकित होकर पूछा, 'क्या इनमें से एक ले सकता हूं?'

'जरूर, ये सब खाने के लिए ही हैं।' कस्तूरबा उसकी मेहनत से खुश थी। उसने उसका कंधा थपथपाया और घर की तरफ मुड़ गयी।

बा के जाते ही मणिलाल अन्नानास के ढेर के सामने जमकर बैठ गया। अपने धारदार चाकू से फल काटा और खाने लगा। आधे घंटे बाद बा लौटी तो देखकर चकित रह गयी कि इतने सारे फलों के छिलकों का ढेर लगा था।

'तेरी प्यास अभी तक नहीं बुझी?'

मणिलाल झेंपकर बोला, 'बा, भूख भी तो लगी थी।' बा मुस्कुरा दीं। उन्हें मुस्कुराते देखकर वह आश्वस्त हो गया। वह खड़े होने के लिए जोर लगाने लगा तो बा को हंसी आ गयी। उसका पेट इतना भर गया था कि झुककर काम करना कठिन लग रहा था।

कस्तूरबा दूसरों को छूट दे देती थी पर अपने मामले में टस से मस नहीं होती थी। वक्त अच्छा हो या बुरा। उसका परिणाम कुछ दिन बाद ही सामने आया। मणिलाल अन्नानास की आखरी खेप काटने गया था। तभी डाक आयी। वह काम रोककर अखबार पढ़ने लगा। अगले ही क्षण वह चिल्लाता हुआ घर की तरफ दौड़ा।

कस्तूरबा उसकी आवाज सुनकर बाहर आयी। पीछे-पीछे रामदास और देवदास भी आ गये। बा ने पूछा, 'क्या हुआ, क्यों चिल्ला रहा है, रे?'

'बापू रिहा हो गये।' उत्तेजित स्वर में मणिलाल बोला।

कस्तूरबा के मन में खुशी की लहर उठी। लेकिन साथ ही डर भी था, कहीं खबर झूठी न हो। उसने सोचा अभी तो पांच हफ्ते शेष हैं। वह बेटे की तरह ही उत्तेजना अनुभव कर रही थी। कुछ और भी सुनना चाहती थी। लेकिन वह संतुलित बनी रही।

'चलो अच्छा हुआ...'धीरे से कहा, 'चलो, सब अपने-अपने काम से लगो, क्या तुम लड़कों ने अपनी खेप निबटा ली?'

रात को देर तक जो कहानियां फैली रही थीं, कस्तूरबा ने किसी पर ध्यान नहीं दिया। दिन में तो इन लोगों को कुछ नहीं मालूम था, इतनी देर में इतना सब कैसे जान गये। वैसे भी वही सब कुछ अपने पति के मुख से सुनना चाहती थी। पर निकट भविष्य में उसकी कोई संभावना नहीं थी।

बाद में सारी घटना पता चली। एक सुबह गांधी को जोहान्सबर्ग की जेल से पुलिस सुरक्षा में जनरल स्मट्स के पास लाया गया था। जनरल बातचीत के द्वारा पंजीकरण के मामले को सुलझाना चाहता था। जनरल ने मित्रता भाव दिखाते हुए कहा, 'मैं भी लंदन में पढ़कर बैरिस्टर बना हूं। मेरे साथ कई भारतीय लड़के पढ़ते थे। मेरे अच्छे दोस्त थे। आप लोगों को मैं नापसंद कैसे कर सकता हूं।'

मि. गांधी ने हंसकर कहा, 'वे भी दोस्त हैं।' फिर बोले, 'आपकी सरकार हमसे क्या चाहती है?'

पहले तो मि. गांधी के सीधे सवाल से स्मट्स सकपका गया। काफी जद्दोजहद के बाद दोनों के बीच समझौता हो गया। जनरल ने आश्वासन दिया कि अगर आपके कहने से अधिकतर ट्रांसवाल के भारतीयों ने पंजीकरण करा लिया तो सरकार काला कानून निरस्त कर देगी। सब जबानी जमा-खर्च था। लिखा-पढ़ी नहीं की गयी थी। मोहनदास ने भी लिखा-पढ़ी पर जोर नहीं दिया। गांधी का मानना था कि सत्याग्रही के जीवन में आशंकाओं की कोई जगह नहीं होती। वह विश्वास करने से नहीं डरता। स्मट्स ने सत्याग्रहियों को रिहा करने का तत्काल आदेश कर दिया। स्मट्स ने गांधी से हाथ मिलाते हुए कहा, 'मि. गांधी आप इसी क्षण से आजाद हैं।'

उन दोनों की बातचीत शाम सात बजे तक चली थी। मोहनदास कैदियों की पोशाक में थे। एक पैसा पास नहीं था। मि. गांधी ने जनरल से कहा, 'तुमने मुझे आजाद करके ठीक नहीं किया, इसकी सजा तुम्हें भुगतनी होगी। मुझे अफसोस है मेरे पास टिकट के पैसे नहीं हैं, तुम्हें देने पड़ेंगे।' स्मट्स की जेब खाली थी। उसने अपने सचिव की ओर देखा। उसकी जेब में चंद पेंस पड़े थे जो रेल का टिकट-क्रय के लिए काफी थे। गांधी ने चलते हुए हंसकर कहा, 'आपकी जेलों को भी अब राहत मिल जायेगी।' जनरल कमरे के दरवाजे तक छोड़ने आया। सचिव बाहर तक गया।

...क्रमशः अगले अंक में

गांधी - 150 जयंती अभियान

माता कस्तूरबा की 150वीं जयंती संपन्न

11 अप्रैल महात्मा फुले का जन्मदिन तथा माता कस्तूरबा का 150वीं जयंती है। 'गांधी - 150 जयंती अभियान' के तहत पुणे में माता कस्तूरबा की समाधि स्थल आगाखां पैलेस से रैली निकाली गयी। माता कस्तूरबा, महात्मा गांधी, बाबासाहेब अम्बेडकर, महात्मा फुले तथा गांधीजी के सचिव महादेव देसाई की समाधि पर पुष्पांजलि अर्पित कर श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। सभा में सर्वधर्म प्रार्थना का पाठ हुआ। कार्यक्रम में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, कार्यक्रम समन्वयक जयवंत मठकर, सेवाग्राम आश्रम के अध्यक्ष टीआरएन प्रभु, राजस्थान की आशा बोथरा, वर्षा सकपाल, हंसाबहन आदि ने कस्तूरबा जी की कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। प्रा. शोभा सुपेकर, अल्का जोशी, निजीमा, अक्षय कडू, चंद्रकांत निवंगुणे, डॉ. दिलीप गरुड आदि गणमान्य एवं कार्यकर्ता कार्यक्रम में उपस्थित रहे। अंत में एडवोकेट संतोष मस्के ने माता कस्तूरबा के नारे लगाकर श्रद्धांजलि सभा में चैतन्य निर्माण किया। जयवंत मठकर ने 'गांधी - 150 जयंती अभियान' का झंडा दिखाकर रैली को आगे रवाना किया। रैली में युवाओं की सहभागिता उल्लेखनीय रही।

'कस्तूरबा से महात्मा' मोटरबाइक रैली आगाखां पैलसे से प्रारंभ होकर पुणे रेलवे स्टेशन पर गांधीजी तथा बाबा साहब अम्बेडकर की प्रतिमा और समताभूमि में महात्मा फुले की प्रतिमा को अभिवादन किया गया। लोकायत की सुश्री अलका जोशी और उनके सहयोगियों ने महात्मा फुले के 'अखंड' का पाठ किया। इसके बाद रैली एस. एम. जोशी सोशलिस्ट फाउंडेशन पर पहुंची। यहां पर फाउंडेशन के सभागार में माता कस्तूरबा का 150वीं जयंती समारोह गंभीरता और उत्साह के साथ संपन्न हुआ। मंच पर न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी, डॉ. रामचंद्र प्रधान, महादेव विद्रोही, शोभनाताई रानडे, नीरा बहन, हंसा बहन, पुष्पा भावे, आदित्य पटनायक, टीआरएन प्रभु, जयवंत मठकर, लोकसमिति अहमदाबाद की नीता बहन उपस्थित थीं।

न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी ने अपने वक्तव्य में कहा कि वर्तमान स्थिति में दूसरों को दोष देने के बजाय हमें क्या करना होगा, इस बारे में सोचना जरूरी है। किसी भी आंदोलन एवं संगठन में लगन से काम करना चाहिए। अभी तक अपनी समाज व्यवस्था में महिलाओं से संबंधित परंपरा अपमानित करने वाली है। महिलाओं को अपवित्र मानने वाला समाज हमारे इर्द-गिर्द दिखायी देता है। कस्तूरबाजी ने पति-व्रत के साथ अहिंसा और गांधी-व्रत का भी पालन किया। हमें समझ लेना चाहिए कि कस्तूरबा गांधी का जीवन आत्म-समर्पण का रहा है। 'आत्म समर्पण यानी शरणांगती नहीं'। उनमें संघर्ष, सत्याग्रह, रचनात्मक कार्य की विशेषता थी। धर्माधिकारी जी द्वारा लिखित और डॉ. रामचंद्र प्रधान द्वारा अनुवादित पुस्तक 'वुमेन पॉवर-गांधीयन डिस्कोर्स' का महात्मा गांधी स्मारक की जनक शोभनाताई रानडेजी ने विमोचन किया। गांधी विचार परिषद, वर्धा के निदेशक भरत महोदय ने उक्त ग्रंथ की विस्तृत जानकारी दी।

इस अवसर पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने अपनी बात प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि आज समाज में भयानक स्थिति है। देश के अलग-अलग प्रदेशों में महिलाओं पर अत्याचार हो रहे हैं। जातीय दंगों की घटनाएं बढ़ रही हैं। इसलिए माता कस्तूरबा के कृतिशील जीवन कार्य का हमें गंभीरता से आचरण करना होगा। पुणे की पूर्व नगरसेविका नीता परदेशी ने सौ वर्ष पूर्व महिलाओं की स्थिति और आज की स्थिति का तुलनात्मक विवरण रखा।

गांधी निधि के अनवर राजन ने कस्तूरबा को समझने पर बल दिया और कहा कि गांधीजी को समझने के लिए कस्तूरबा को छोटा बनाना जरूरी नहीं है, क्योंकि वे दोनों एक दूसरे के सहयोग से लगातार विकसित होते गये।

'गांधी 150 जयंती अभियान' के समन्वयक जयवंत मठकर ने मंच पर महानुभावों को खादी की शॉल भेंटकर सम्मान किया। उन्होंने अपने उद्बोधन में कहा कि आज देश में धार्मिक कट्टरता, जातीय नफरत बढ़ गया है। भारतीय लोकतंत्र खतरे में पड़ गया है। इस पृष्ठभूमि में कस्तूरबा के ही विचार हमें मुक्ति दिला सकते हैं। इसलिए गांधी-विचार के साथ कस्तूरबा के जीवन-पद्धति और उनकी आत्मसमर्पण की भावना को आज गंभीरता से समझने की जरूरत है। आज महिलाओं को कस्तूरबा के जैसे ही रचनात्मक, राजनीतिक, सामाजिक कार्यों में सक्रिय होना आवश्यक है। सही मायने में यही श्रद्धांजलि होगी।

पवनार आश्रम की उषा वोहरा ने कस्तूरबा के जीवन से जुड़े कई प्रसंगों पर प्रकाश डाला। दोनों पति-पत्नी एक दूसरे की आपसी समझ बढ़ाते-बढ़ाते विकसित होते गये, इसका उदाहरण भी उन्होंने पेश किया। अ. भा. सर्वोदय समाज के संयोजक आदित्य पटनायक ने कहा कि कस्तूरबा के सत्याग्रही, संघर्ष और संयम आदि जीवनमूल्यों को आज हमें अपने आचरण में लाने की जरूरत है। सर्व सेवा संघ के मंत्री रमेश पंकज ने कहा कि 'गांधी 150 जयंती अभियान' के तहत इस तरह के कार्यक्रम सही मायने में आवश्यक हैं, ऐसे कार्यक्रम दूसरे राज्यों में करके कस्तूरबा के विचारों का प्रचार-प्रसार करना चाहिए।

कार्यक्रम में महाराष्ट्र गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष डॉ. कुमार सप्तर्षी, युवक क्रांति दल के कार्यकर्ता, विधायक मोहन जोशी, प्रदेश कांग्रेस के मंत्री एडवोकेट अभय छाजेड, अण्णासाहेब जाधव, महाराष्ट्र प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष डॉ. शिवचरण ठाकुर, ग्रामस्वराज समिति के अध्यक्ष शंकर बगाड़े, विद्याबाल, पुष्पा भावे, नीता महादेव, सर्व सेवा संघ के महामंत्री शेख हुसेन, लक्ष्मण वाघचौरे, विजय तांबे, रवीन्द्र रुक्मिणी पंढरीनाथ, प्रदीप खेलूरकर, चंद्रकांत चौधरी, साम्ययोग साधना के संपादक रमेश दाणे, चंदन पाल, भरत महोदय, चतुराबहन, जीवीवीएसडीएस प्रसाद, प्रा. सतीश तोडणकर, सुंदर देसाई, मालती शिरसाठ, अर्पिता मुंबरका, श्यामराव कन्हाले, डॉ. दिलीप गरुड, लताताई राजपूत, डॉ. हेमलता पाटिल, विशाल अग्रवाल, प्रा. प्रवीणा सप्तर्षी, मारुती खैरकर, चंद्रकांत निवंगुणे, रामसिंह राजपूत, देशपांडे गुरुजील आदि सक्रय कार्यर्ताओं ने भाग लिया।

अध्यक्षता न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी तथा धन्यवाद ज्ञापन पुणे जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष एडवोकेट संतोष मस्के ने किया। **–स. ज. प्रतिनिधि**

उमा शंकर संवेद की चार कविताएं

(एक)

देश पूछता है सवाल
भारत भाग्य विधाताओं से
आखिर क्यूं है कैसा वैर
बेटी बहनों माताओ से।

कब तक बेटियों की सरेआम
अस्मत लूटी जायेगी
कौन बचाए बेटी बहनों को
उन्मादी क्रूरताओं से।

भ्रूण हत्या से बच गयी तो
बाहर कौन बचायेगा
कौन बचायेगा दहेज की
धधकती ज्वालाओं से।

कौन बचाए कापुरुषों से
जो सरेआम ये कहते हैं
कौन करता है रेप
तीन-चार बच्चों की माताओं से।

घर को घरवालों ने लूटा
बदनाम सीमा पार हुआ
कौन बचाये आसिफा को
मजहबी बर्बरताओं से।

कुछ तो शर्म करो
अपनी बेटी बहनों को याद कर
राम अगर मर्यादित है तो
सीता की मर्यादाओं से।

जिस दिन सीता गाय नहीं
महाकाली बन जायेगी
अयोध्या खाक हो जायेगी
शक्ति की गर्जनाओं से।

जो करती है राजतिलक
उसे अस्त्र उठाना होगा
हर सीता को लड़ना होगा
खुद की विवशताओं से।

(दो)

तस्वीर हटाना तो महज एक बहना है
भई मकसद उनका नफरत फैलाना है।

नौकरी शिक्षा जरूरी नहीं शायद उन्हें
कहीं गीता कहीं पे कुरान को जलाना है।

बच्चों के बंद हो स्कूल बंद दुकानें रहे
उनको बात बात पर हंगामा करवाना है।

क्यूं भरते हो हुंकार महाशक्ति बनने का
नन्हें हाथों में जब तलवार ही थमाना है।

हां गर्व है हमें अपने धर्मनिरपेक्ष देश पर
तू सुना मुझे क्या क्या तुझको सुनाना है।

पैदा करने को आंधियां न चिराग जलाओ
आंधियों का मकसद चिराग को बुझाना है।

ये तो कुछ भी नहीं महज एक सियासत है
नफरत फैलाकर अपने वोट को बढ़ाना है।

पानी अफीम वाले कुएं के पी रहे हैं लोग
संवेद जागो तुझे औरों को भी जगाना है।

(तीन)

खुदा रहनुमा तू कसाई न दे
सदा बेटियों की सुनाई न दे।

इंसाफ को रौशनी दे मगर
कफस से तू ऐसी रिहाई न दे।

रूह कांपती है जिसे देखकर
कलियों की ऐसी विदाई न दे।

जो चुभकर हंसे हया मर गयी
तू कांटों को ऐसी बेहयाई न दे।

ये कैसा चश्मा लगा आंख पर
दिखाई पड़े मगर दिखाई न दे।

अच्छी है तेरी नींद की ये अदा
सुनाई पड़े भी तो सुनाई न दे।

जहां झूठ लगने लगे सच मुझे
खुदा मुझको वो रौशनाई न दे।

अगर जिन्दगी ये है तुमने दिया
खुदा मौत की तुम दवाई न दे।

पहले से ही दिल है गमों से हरा
पत्थर रो पड़े वो सच्चाई न दे।

जहां से कोई गम पराया लगे
जिन्दगी तू मुझे वो ऊंचाई न दे।

(चार)

जाने क्यूं दिल भरा भरा सा है
दर्द ए दिल फिर हरा हरा सा है।

चांदनी रात में सिरों की गली
चांद सहमा सा डरा डरा सा है।

कोई सुनता नहीं किसी को अब
जैसे हर शख्स बहरा बहरा सा है।

जिन्दगी बोझ बन गयी है शायद
पांव सबका थका थका सा है।

लोग खाने लगे जब झूठी कसमें
कौन रिश्ता बचा हरा भरा सा है।

जमाने लगेंगे जख्मों को भरने में
जख्म सबका ही नया नया सा है।

मौसम आंख का गुजरता ही नहीं
वक्त कहीं पर ठहरा ठहरा सा है।

मंजिल भूल गयी भूल सी गयी राहें
पत्थर मील का बहरा बहरा सा है।

बेबसी है बेकली है शहर दर शहर
हरएक कली पर पहरा पहरा सा है।

करार ले गया कौन मेरा दिल बता
ख्याल में अंदाजा ए सहारा सा है। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।